SURLOK

हिन्दी विभाग

सम्पादक
डॉ. बलबीर कुन्दरा

छात्र–संपादक
अमन आकाश
दीपक कुमार मिश्रा

अनुक्रमणिका

संपादक की कलम से...

छात्रा-संपादक की कलम से...

1.	सूचना क्रांति के साइड इफेक्ट	– डॉ. बलबीर कुन्दरा	5
2.	श्रीरीठा साहिब : वादियों की गोद में	– अमन आकाश	7
3.	भूमंडलीकरण के दौर में गुरु गोबिन्द सिंह जी के काव्य की सार्थकता	– डॉ. हरदीप कौर	10
4.	अभिशप्त बचपन	– अमन आकाश	12
5.	लूट के दिन	– बिपिन बिहारी दुबे	14
6.	माँ	– अमन आकाश	15
7.	आखिरी दुआ	– शिवांजलि पांडेय	17
8.	चिन्ता	– दीपक कुमार मिश्र	19
9.	शहर बदल गया	– रंजन कुमार सिंह	20
10.	समझो जानो और पहचानो	– डॉ. हरनेक सिंह गिल	20
11.	एक शाम, मधुबन के नाम	– विनय राजहिन्द	21
12.	पेशावर अटैक	– प्रियंका सिंह	22
13.	अपनी दुनिया मुझे	– शोभित गुप्ता	22
14.	भीख मांगते बच्चे	– राहुल रंजन	23
15.	मासूम जान	– अनामिका	24
16.	प्रेरणा	– मनीषा शर्मा	24
17.	क्या कसूर है मेरा	– आयुषी शुक्ला	25
18.	छवि तुम्हारी	– शिवांजलि पांडेय	26
19.	आजादी हिन्दुस्ता की	– वर्षा लाली	26
20.	ये दुनिया	– जतिन ग्रोवर	27
21.	किसान की परेशानी	– पुनीत कुमार	28
22.	पहचान हिन्दी की हिन्दी से	– अमित कुमार श्रीवास्तव	29
23.	मेरा गाँव	– अविनाश राय	30
24.	प्रकृति का सौन्दर्य	– हेमन्त कुमार	30
25.	कृषक-होली	– दीपक कुमार मिश्र	31
26.	बलिदानें उमंग भरती हैं	– दीपक कुमार मिश्र	32
27.	जग की यह रीत बन गयी	– वर्षा लाली	33
28.	भूल गए उन्हें	– अमित कुमार	33
29.	एक अनोखा सम्बन्ध	– मिथिलेश	34
30.	माँ की पुकार	– अनुराग कुमार	36
31.	माँ तेरी है	– कुन्दन कुमार	37
32.	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और नियमन	– बिपिन बिहारी दुबे	38
33.	क्यो?	– अमित कुमार श्रीवास्तव	40

संपादक की कलम से...

वक्त की बाँह थामे कैलेण्डर बदलते रहते हैं। वक्त के बदलते मिजाज के साथ प्रतिवर्ष हमारे महाविद्यालय की पत्रिका 'सुरलोक' भी नए मिजाज और तेवर बदलती रही है। इस बार विकास का प्रतीक बनी पत्रिका के माध्यम से छात्राों की अस्मिता को एक नई पहचान मिली है।

'सुरलोक' का प्रस्तुत संस्करण सुविज्ञ पाठकों के कर कमलों में समर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। इस सुन्दर पत्रिका के 'हिन्दी खण्ड' की सम्पादिका के रूप में चौथी बार आपकी ओर उन्मुख होते हुए मैं अत्यन्त उत्साहित हूँ। सूचना-विस्फोट के युग में सोशल साइट्स पर अपडेट रहने वाले युवा रचनाकारों की व्यस्तता देखते हुए उनसे सर्जनात्मक लेखन की उम्मीद करना मुझे थोड़ा कठिन प्रतीत हुआ। इस कठिनाई से निजात पाने के लिए हमने अंतः कक्षा सर्जनात्मक लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया। प्रतियोगिता में छात्रों को एक थीम ;बचपन में कहते थे – माँ मेरी है, माँ मेरी है। बड़े होने पर कहते हैं – माँ तेरी है, माँ तेरी हैद्ध दिया गया और प्रकृति के मनोरम रूप दिखाने वाली एक वीडियो क्लिपिंग दिखाई गई। महाविद्यालय के विभिन्न विभागों के छात्रा-छात्राओं ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया एवं अपनी रचनात्मकता की मिसाल पेश की।

फरवरी महीने में महाविद्यालय में आयोजित 'सुरलोक महोत्सव' के अंतर्गत विभिन्न महाविद्यालयों से आए युवा रचनाकारों को एक मर्मस्पर्शी वीडियो क्लिपिंग दिखाई गई, जिसका थीम था – 'सड़कों पर भीख माँगते हुए अबोध बच्चे' विषय को स्पष्ट एवं सजीव बनाती प्रस्तुत रचनाओं को पत्रिका का अंश बनाकर हमें प्रसन्नता हो रही है, जिसमें 'माँ', 'अभिशप्त बचपन', 'भीख माँगते बच्चे', 'मासूम जान', 'क्या कसूर है मेरा', 'प्राकृतिक सौंदर्य' एवं बलिदानें उमंग भरती हैं' शामिल हैं।

दोनों प्रतियोगिताओं में हमारे महाविद्यालय के संवेदनशील विद्यार्थी अमन आकाश ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। इस प्रकार प्रस्तुत अंक में हमने कुछ नया करने के लिए मर्मस्पर्शी वीडियोज दिखाकर उन्हें भावनात्मक धरातल पर स्पंदित करके लेख/कहानी/कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। इस नए प्रयास में हम किसी हद तक सपफल भी रहे हैं क्योंकि हम मानते हैं कि नवोदित के भीतर ही कहीं अग्रगामी व्यक्तित्व छिपा होता है। यह अग्रगामी व्यक्तित्व सर्जना के किसी भी क्षेत्र ;कविता, कहानी, लेखद्ध में हो तो एक न एक दिन उसे अपना रास्ता मिल ही जाता है।

प्रस्तुत अंक में भी गत वर्षों की भाँति सूर्य की नवोदित किरणों के समान उगती हुई नवोदित प्रतिभाओं ने अनेकविध विधाओं रूपी पुष्पों के माध्यम से 'सुरलोक' पत्रिका को सुरभिमय कर डाला है।

हो सकता है कि आशुलेखन में अनेकविध त्रुटियां रह गई हों। परन्तु हमने प्रामाणिकता और सामर्थ्यानुसार इस अंक को उपयोगी और संग्रहणीय बनाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत अंक को संवारने में छात्रा सम्पादक- अमन आकाश और दीपक मिश्रा का सर्वाधिक योगदान रहा है। आपके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। सुधी पाठकों के मूल्यांकन व समालोचना हेतु प्रस्तुत है- 'सुरलोक 2014-15'

सम्पादक

डॉ. बलबीर कुन्दरा

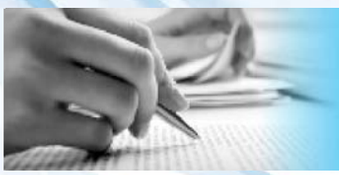

छात्र संपादक की कलम से...

सामयिक युवा मानस के उपज की तौल, अल्पता में संपूर्णता की समेट, कागजी कैनवास पर अक्षरों की सारगर्भित कलाकृति 'सुरलोक 2014–15' छिटपुट साहित्यिक एवं साँस्कृतिक मंच मात्र न होकर वर्षों से नित नूतन को नत करती श्री गुरु नानक देव खालसा महाविद्यालय परिवार की उन्नति की दिशा में एक और संयमित कदम है, जिसकी प्रस्तुति का अंश बनना वास्तव में जन्म–जन्मांतर से फलीभूत सुकर्मों का ब्याज है। अवश्य ही इसकी प्रस्तुति संपूर्ण महाविद्यालय हेतु हर्ष का विषय है।

हमारी मार्गदर्शिका डॉ. बलबीर कुंदरा महोदया के हम आभारी हैं, जिनके अथक एवं अकथ श्रम की छत्राछाया के बिना 'पत्रिका' का संपादन अकल्पनीय था। आपके संसर्ग ने एक प्रश्न उठाना शुरु कर दिया कि–

आप में गुण कि
गुणों में आप ?
यह यक्ष प्रश्न!

मौजूदा वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग की उपज 'इंटरनेट' के कलुषित वदन से प्रश्न उठाती आपकी रचना 'सूचना क्राँति के साइड इफेक्ट' समाज के प्रति आपके सूक्ष्मावलोकन का परिचायक है। श्री गुरुनानक देव जी के चरण स्पर्श से कड़वे से कड़वे मीठे बने 'रीठे' के कारण प्रसिद्ध पावन भूमि श्री रीठा साहिब का यात्रा वृतांत जहाँ 'चीड़ों' की गोद में सुलाता है, वहीं 'लूट के दिन', 'आखिरी दुआ', 'चिंता', 'अभिशप्त बचपन' अजीब–सी बेचैनी पैदा कर देती है। 'छवि तुम्हारी', 'एक शाम मधुबन के नाम' जहाँ पुलकित युवा मन में राग जगाती हैं, वहीं 'माँ', 'माँ की पुकार', 'माँ तेरी है' मातृऋण का बोध कराती हैं। कलपती मातृभाषा 'पहचान हिन्दी से' के माध्यम से अपनी सिसक एवं जड़ हो चुके स्वाभिमान को जागृत करती है।

आधुनिक विडंबना यह है कि अच्छे रचनाकार के लिए अच्छे पाठक मिलने मुश्किल हैं एवं अच्छे पाठक के लिए अच्छे रचनाकार। हमें विश्वास है कि भिन्न–भिन्न ध्येयों से अभिभूत 'पत्रिका' सही हाथों में पहुँच; अच्छे रचनाकारों एवं अच्छे पाठकों का आदर्श कुटुम्ब निर्माण करेंगी। भिन्न–भिन्न विधाओं, भिन्न–भिन्न भाषिक शब्दावलियों के माध्यम से छलनी बचपन, बेबस मातृमन, मातृभाषा, ग्राम्य जीवन आदि से प्रश्न उठाती रचनाएँ वस्तुतः गागर में सागर हैं।

युवा रचनाकारों की अभिव्यक्ति में अवश्य ही शाब्दिक त्रुटियाँ एवं भाविक अपरिपक्वता रही होंगी। शमशेरजी कहा करते थे कि लेखन के आरंभिक 8–10 साल सिर्फ सीखना होता है। सुविज्ञ पाठकगण के निष्पक्ष आलोचना–समालोचना हेतु 'सुरलोक 2014–15' आपके समक्ष प्रस्तुत है।

छात्र–संपादक

अमन आकाश

दीपक कुमार मिश्रा

सूचना क्रान्ति के साइड इफ़ेक्ट

मौजूदा दौर में सूचना तकनीक में जो क्राँति हुई है, उसने पिछले दो दशकों में ही इस दुनिया का नक्शा बदल दिया। शोधकर्ताओं का कहना है कि मानव-इतिहास में अब तक पैदा हुई सूचना का 99 प्रतिशत सिर्फ इसी शताब्दी में पैदा हुआ है। इतनी ज्यादा व तेज़ी से आती हुई जानकारियों ने मानव-मन में हलचल, समाज में एकाग्रता की कमी और रिश्तों में संकट पैदा कर दिया है। हम कहीं एक जगह टिक कर काम नहीं कर पाते हैं, इसका असर हमारे युवा वर्ग पर सबसे अधिक पड़ा है। गाँवों के युवाओं ने जहाँ अपने माता-पिता को छोड़ कर पढ़ाई और नौकरी के लिए महानगरों में पलायन किया है, वहीं महानगरों के पढ़े-लिखे युवाओं ने ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, कनाडा और अधिकतर मज़दूरों ने खाड़ी देशों में पलायन किया है। एक सर्वे के मुताबिक केरल राज्य से 2.5 मिलियन युवा खाड़ी देशों में रोजगार हेतु बस गये हैं, उड़ीसा में बुज़ुर्गों का दाह संस्कार करने वाला कोई नहीं है। बुज़ुर्ग माता-पिता घरों में अकेले पड़े अपनी उन संतानों की राह देख रहे हैं, जिनके जन्म पर उन्होंने सोचा था कि वे बुढ़ापे में लाठी की तरह सहारा देंगे। पारम्परिक भारतीय समाज के ताने-बाने में बेटी को पराया धन माना जाता है, परन्तु सूचना युग में विदेशों में बस कर हजारों-लाखों बेटे अब पराया धन हो गए हैं। इसके अलावा इंटरनेट से मिलने वाली सूचनाओं से नौकरियों की अवधि भी घटी है। जगह-जगह नौकरियों के नए-नए रास्ते खुले हैं, एक नौकरी को छोड़ कर दूसरी नौकरी लेने की हुड़क ने युवाओं में बेचैनी पैदा की है। अधिक पाने की इच्छा में दिल्ली जैसे महानगरों के युवा नौकरियों के लिए अपने घर को सुबह 4:30 बजे छोड़ कर नोएडा-गुड़गांव जाते है और देर रात को घर वापस आते हैं। कभी-कभी तो ज्यादा वेतन के लालच में कॉल-सेंटरों में काम कर के रात की नींद गंवा कर दो घंटे का सपफर तय करके घर लौटते हैं और पूरा दिन सोने का यत्न करके भी गाढ़ी नींद न सो पाने के कारण बेचैन और चिड़चिड़े रहते हैं। अधिक कमाई की लालच में विदेशों में नौकरियां कर रहे हैं। बार-बार नौकरियाँ बदल कर भी उन्हें सुख-चैन नसीब नहीं हो रहा है। घर से दूर नौकरियों के बढ़ते दबाव से छोटी उम्र में ही लीवर एनलार्ज, हार्ट अटैक, शूगर, किडनी फेलियर की बीमारियाँ आज आम हो गयी हैं, जिसके कारण रिश्तों की भी अवधि घटी है। मौजूदा दौर में पति-पत्नी के रिश्तों में वो ठहराव देखने को नहीं मिलता, जो कभी पहले हुआ करता था। घरों में छोटी-सी बात पर महाभारत मच जाता है। आजकल नव दम्पतियों में प्रतिकूल स्थितियों को सम्भालने की क्षमता उतनी नहीं है, जितनी होनी चाहिए। हालात बेकाबू होने पर कत्ल, डिप्रेशन का शिकार होने पर आत्म हत्या, रातों-रात अमीर बनने के लिए अपराधों का बढ़ना आमबात हो गयी है। अपने देश की आत्मवादी संस्कृति को नकार कर भोगवादी संस्कृति की अंधी दौड़ ने बेगानों को अपना और अपनों को बेगाना बना दिया है। व्यस्तताओं से भरी दुनिया और हर बात की जानकारी से अपने आपको अपडेट रखने की जद्दोजहद में युवा खुद से इतने दूर हो गये हैं कि अपने अंदर झाँकने की कोशिश में भी कतराते हैं। दम्भ और अहंकार ने उनके जीवन की सरलता और सहजता को नष्ट कर दिया है जबकि जीवन को सहज भाव से जीने वाला व्यक्ति असामान्य विरोधी स्थिति में भी हिम्मत नहीं हारता है, बल्कि सही समय की प्रतीक्षा करते हुए विपरीत परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेता है। सहज भाव वाले तनाव से दूर रहते हैं और छोटी-छोटी खुशियों में अलौकिक आनंद का अनुभव करते हैं। ज़िंदगी में इतनी बड़ी उपलब्धि तुरंत नहीं मिलती है, उसके लिए अनेक तृष्णाओं का

परित्याग करना होता है परन्तु सूचनाएँ तो तृष्णाओं को भड़का कर आग में घी डालने का काम कर रही हैं। त्योहारों पर ऑनलाइन खरीददारी ने इस बार रही सही कसर पूरी कर दी है। आमदनी अठन्नी और खर्चा रुपया की पिफतरत के कारण घरों में क्लेश बढ़ा है। स्वार्थ, ज़िद और अहंकार के वशीभूत होकर ये नवदम्पति अपनी पुरानी जन्मदात्री पीढ़ी के साथ तालमेल तो दूर की बात है, आपस में भी तालमेल नहीं बिठा पा रहे हैं। यही कारण है कि एक-दूसरे से छोटे-मोटे तालमेल करके किसी बिगड़ते सम्बंध को सम्भाल लेने की क्षमता सूचना-विस्फोट के युग में कम हो रही है। परिणामस्वरूप तलाक़ के केसों में वृद्धि हो रही है। 2010 और 2014 के बीच मुम्बई में तलाक़ के केस दो गुने से अधिक बढ़ गए हैं, जबकि कोलकाता में 2003 और 2014 के बीच तलाक़ के केस तीन से चार गुने बढ़ गए हैं। विवाह के पहले वर्ष के भीतर होने वाले तलाक़ और भी तेज़ी से बढ़े हैं। सूचनाओं के ज़रिए मिली उन्नमत्ता और स्वतंत्र जीवन जीने की भोगवादी ललक ने उस परिवारवाद को बुरी तरह लताड़ दिया है, जो कभी व्यक्ति के विकास की सबसे बड़ी धुरी हुआ करती थी। परिवारवाद में प्रेम, त्याग, समझौते के साथ-साथ दायित्वों का निर्वहन भी है, पर सूचना क्राँति से पैदा हुए भौतिकतावाद ने नव-दम्पतियों की अंतहीन महत्त्वाकांक्षाओं और परिवार की नींव में सेंध लगा दी है।

अक्सर बुजुर्ग कहते है कि पैसों से चीज़ें खरीदी जा सकती हैं, खुशी नही। चीज़ों से केवल कुछ पल की खुशी मिलती है, हमेशा के लिए नहीं। एक दिन जिस चीज़ से खुशी मिलती है, ज़रूरी नहीं कि दूसरे दिन उसी से खुशी मिल जाए। कुछ पल की खुशी हासिल करने के लिए पूरी ज़िंदगी सूचनाओं के ज़रिए वो देखने की कोशिश करते हैं जो हम वास्तव में होते नहीं। इसी कारण हम अंदर से खुश नहीं हो पाते। 'सोशल-साइटों' में अपने आपको अपडेट करते-करते कभी-कभी हम खुद से भी और अपनों से भी दूर हो जाते हैं। सच तो यह है कि खुद को महसूस करने में जो मज़ा है, जो आनंद है, वह और कहीं नही मिल पाता है। मशहूर लेखक डेल कारनेगी कहते हैं कि- ''खुशियाँ ढूँढने से नहीं मिलतीं, खुद को पा लेने के अहसास से मिलती हैं।''

दरअसल, खुद की तलाश, यानी अपनी शख्सियत का आकलन कर पाना मुश्किल काम है। यह एक ऐसा अहसास है, जो आपको बताता है कि आप अपनी प्राथमिकताएँ तय करके अपनी इच्छा, आकाँक्षा के अनुरूप काम करें; बजाए इसके कि सोशल-साइट्स के ज़रिए दूसरों के जीवन में ताक-झाँक करके दूसरों की नकल करें, झूठा दिखावा करें। मनोवैज्ञानिक पॉल सैमुअल के अनुसार- ''थ्री-डी यानी 'डिज़ायर-इच्छा, डिसीज़न-निर्णय और डू-काम' करते हुए ही किसी व्यक्ति को खुशी हासिल होती है।'' सच तो यह है कि जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छा-अनुसार कार्य करते हुए उसमें पूरी तरह रच-बस जाता है और किसी अंतिम निर्णय पर पहुँच जाता है; तब उससे संतुष्ट होकर आत्मिक सुख में निवास करता है। पर आजकल के युवा इयरफोन लगा कर जिस रंगीन सुख का भोग कर रहे हैं, वो केवल भ्रमित कर देने वाला क्षणिक सुख है, जिसमें सब कुछ पाने की चाह है, कुछ देने की चाह नहीं है। हमारे समाज के संतुलन के लिए निश्चित रूप से यह खतरनाक स्थिति है।

-डॉ. बलबीर कुन्दरा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग

श्रीरीठा साहिब : वादियों की गोद में

यात्रा करना किसे अच्छा नहीं लगता? आधुनिक काल में राहुल सांकृत्यायन, हिमांशु जोशी, अमृतलाल बेगड़ जैसे कई यायावर मिल जाएंगे; जिन्होंने अपनी घुमक्कड़ी से नए कीर्तिमान स्थापित किए। हमारा भारतवर्ष अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए विश्वविख्यात है। चाहे उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय शृंखला हो या फिर दक्षिण में पाँव पखारती हिंद महासागर की लहरें। चाहे पूरब में सूर्य की नव लालिमा से प्रथम परिचय हो या फिर पश्चिम में रंगीली संस्कृति वाला रेगिस्तान, प्रकृति के विविध रंगों का दर्शन भारत में ही संभव है। हम भी कुछ दिनों से भारत-भ्रमण की सोच रहे थे कि अचानक गुरुजी की कृपा से वो मौका मिल गया। विगत 14 मार्च को हमारे कॉलेज की डिविनिटी-सोसायटी द्वारा एक टूर का आयोजन किया गया। जगह चुनी गयी थी उत्तराखंड स्थित श्रीरीठा साहिब। सिख धर्म के पावन स्थलों में श्रीरीठा साहिब का नाम भी अग्रणी है। कहते हैं कि किसी पाक-पावन स्थल पर हम अपनी मर्जी से नहीं जाते, वहाँ से हमारा बुलावा आता है। गुरु का बुलावा आए और कोई उसको नकार दे, ऐसा भी संभव है भला! तमाम औपचारिकताओं के बाद 25 विद्यार्थी और 7 प्राध्यापकों का जत्था, जिसमें डॉ. गुरदीप कौर, श्री मनजीत सिंह भाटिया, डॉ. हरनेक सिंह गिल, डॉ. परमजीत कौर, डॉ. अविनाश कौर, श्रीमति जास्मीन कौर, श्री जसंविदर सिंह, श्री अमरजीत सिंह थे, सब को गुरु की चरणरज को शीश से लगाने का मौका मिला। इस जत्थे में हम और हमारे मित्र दीपक मिश्रा भी शामिल थे। हमें इस बात की अपार खुशी थी कि हमें भी गुरुदर्शन का सौभाग्य मिला। 14 मार्च की रात 8 बजे हम दोनों कॉलेज परिसर में पहुँच गए थे। हमारे साथी भी वहाँ पहले से मौजूद थे। सब के मन में एक नई जगह पर जाने की उत्सुकता और रोमांच था। उस रात बह रही बसंत-बयार वातावरण में सिहरन पैदा कर रही थी, ऐसा लग रहा था हमारी खुशियों में पेड़-पौधे भी झूमकर खुशियाँ साझा कर रहे हैं। हमें ले जाने वाली बस लगभग 9:30 बजे कॉलेज के सामने खड़ी थी। सब अपना-अपना सामान संभालकर बस की तरफ बढ़े। जत्थे का संचालन गुरदीप मैम कर रहीं थीं। सामान पैक करवाने के बाद कॉलेज के मुख्य द्वार पर सामूहिक अरदास हुई, तत्पश्चात "जो बोले सो निहाल-सत श्री अकाल" के पवित्र उच्चारण के बाद झुंड अपनी मंजिल की ओर निकल पड़ा। कुछ छात्रा अपने साथ ढोल-मंजीरा भी लाए थे और उन्होंने गुरुकीर्त्तन करना शुरू किया। भाटिया सर शबद गा रहे थे और छात्र उनका अनुकरण कर रहे थे। धर्मिक परंपराओं के अनुसार हम सबने अपने सिर को ढँक रखा था। हमारी बस अब दिल्ली की सीमाओं को लाँघकर उत्तर-प्रदेश में प्रवेश कर चुकी थी। रात के करीब 11:30 बज रहे थे। दिल्ली की गगनचुंबी इमारतें, चमचमाती सड़कें बहुत पीछे छूट चुकी थी, अब हम उत्तर-प्रदेश के ग्रामीण इलाकों से रू-ब-रू हो रहे थे। मिट्टी के बने घर, मद्धिम रोशनी में जलती लालटेन, झींगुरों की आवाज़, सरल-निष्कपट ग्राम्यजीवन का जीवंत चित्र उकेर रही थी। इन सब दृश्यों का आनंद लेते-लेते कब हमें भूख का अनुभव होने लगा, पता ही नहीं चला। लेकिन लंबी यात्रा के दौरान हम भारी या तला-भुना भोजन नहीं कर सकते। इसलिए गुरदीप मैम ने पहले से ही खाने के हल्के-फुल्के फल वगैरह रखवा लिए थे। सबने सुपाच्य डिनर किया और कुछ ही क्षण बाद निद्रा देवी के शरण में चले गए। लेकिन मेरी आँखों में नींद कहाँ। मैं देर रात तक घुप्प अँधेरे को निहारता रहा और पता नहीं मेरी भी आँखें कब लग गयी। चिड़ियों की चहचहाहट और गाड़ियों के चिल्ल-पों की मिश्रित आवाज़ से जब सुबह नींद खुली तो अपने आप को उत्तर-प्रदेश के रामपुर शहर में पाया। हल्की धुंध और पूरब से उठती लालिमा ने वातावरण को खुशनुमा बना दिया था। मेरे अन्य साथी भी जग चुके थे। बस चालक गाड़ी को अनवरत भगाए जा रहा था। कुछ देर बाद पता चला कि हम गलत दिशा में बढ़ रहे थे। सबने मिलकर चालक को झिड़की लगायी। लेकिन अब किया भी क्या जा सकता था! बस

को मोड़ा गया और स्थानीय बाशिंदों से पूछते-पूछते हम अपनी मंजिल की ओर बढ़े। करीब 2 घंटे के बाद हम उत्तराखंड की सीमा में प्रवेश कर चुके थे। हमारा पहला पड़ाव था ऊधम सिंह नगर जनपद स्थित नानकमत्ता पीपल साहिब गुरुद्वारा। सुबह 11 बजे हम वहाँ पहुँचे। सबने वहाँ मत्था टेका और लंगर छका। हमें आज ही श्रीरीठा साहिब के लिए निकलना था। लेकिन अब काफी देर हो चुकी थी और गुरदीप मैम ने बताया कि वहाँ का मौसम खराब है, लगातार बारिश हो रही है। ऐसे मौसम में पहाड़ी इलाकों में यात्रा करना ख़तरे से खाली नहीं। अंत में मैम ने कुशल नेतृत्त्व का परिचय देते हुए उस दिन वहीं रुकने का निर्णय लिया। फ्रेश होने के बाद सबने स्थानीय जगहों को देखने का मन बनाया। सबकी रजामंदी के बाद करीब 2 बजे सब श्री बावली साहिब देखने चले। कहते हैं कि यहाँ गंगा की धरा को मोड़कर लाया गया है। वहाँ के पावन जल से आचमन करने के बाद कुछ दोस्त अठखेलियाँ करती लहरों के साथ फोटोग्राफी करने लगे। एक सामूहिक फोटोग्राफ भी लिया गया। प्रथम वर्ष की छात्रा एवं कुशल फोटोग्राफर दीक्षिता सबको अपने कैमरे में कैद कर रही थी। हमें पता चला कि हमारे पड़ोसी देश नेपाल की सीमा वहाँ से तकरीबन 37-38 किमी. की दूरी पर ही है। आनन-फानन में सबने वहाँ घूमने का मन बना लिया। एक घंटे की यात्रा के बाद हम नेपाल की सीमा पर भी पहुँचे और एक अन्य देश से सबका साक्षात्कार हुआ। सब वहाँ ज्यादा-से-ज्यादा देर रुकना चाहते थे। लेकिन समय की कमी के कारण सब विवश थे। अचानक हमें अपने ऊपर गिरती सर्द बूँदों का अहसास हुआ और जब तक हम भागकर बस तक पहुँचते बारिश तेज रूप अख्तियार कर चुकी थी। खैर, हम बचते-बचाते अपने ठिकाने पर पहुँचे। लगातार 10 घंटे की यात्रा की थकान हम पर हावी थी और डिनर करते ही सब अपने-अपने कमरे में बंद हो गए। अगली सुबह हमें श्रीरीठा साहिब के लिए निकलना था। सुबह 4 गाड़ियाँ मँगवायी गयी और हम सब श्रीरीठा साहिब के लिए निकल पड़े। गाड़ियाँ तेजी से अपने पथ को नाप रही थीं और हम धीरे-धीरे वादियों के आगोश में बढ़ रहे थे। रास्ते में कई जगह गन्ने की पेराई हो रही थी और ताजे गुड़ की उठती सोंधी महक हमें ललचा रही थी। मैदानी इलाका अब खत्म हो गया और हम ऊँचाइयाँ छू रहे थे। मैंने मन-ही-मन वाहे गुरुजी का सुमिरन किया। पहाड़ी प्रदेशों की यात्रा कमजोर दिलवालों को कुछ क्षण के लिए दहला देती है। धीरे-धीरे मेरा भी डर खत्म होने लगा और मैं प्रकृति के शानदार नजारों का लुत्फ लेने लगा। कभी चढ़ाई-कभी ढलान, कभी गहरी खाई; तो कभी नीचे; कल-कल कर बहती पहाड़ी नदी। इन रास्तों पर सफर करना ही असली जिंदगी को समझना है। कितना शाँत वातावरण था, चिड़ियों की चहचहाहटों में भी नीरवता थी। पीठ पर बस्ता लादे स्कूल जाते छोटे-छोटे बच्चे, जिनके गाल कश्मीरी सेब की मानिंद लाल थे, हमें देखकर हाथ हिलाते। घरों के बाहर गिलास में चाय पीते बुजुर्ग, सिर पर लकड़ियों का गठ्टर लादे जाती महिलाएँ, कितने खुश थे सब अपनी जिंदगी से। वहाँ कोई भी हमारी तरह यांत्रिक जिंदगी नहीं झेल रहा था। धीरे-धीरे सूर्य की किरणों ने अपना-अपना दायरा बढ़ाना शुरू किया। चीड़ के पेड़ों पर छितराती रोशनी वादियों को स्वर्णिम आभा प्रदान कर रही थी। सच में, विधाता ने प्रकृति के कैनवास को अपने विविध रंगों से सजाया है, जिसे हम मानव अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के कारण बदरंग करते जा रहे हैं। एक जगह हमारी गाड़ी रुकी, सब चाय-नाश्ते के लिए उतरे। दूर कहीं से बाँसुरी की मधुर आवाज आ रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे कोई प्रेमी इस निर्जन में अपनी खोई प्रेमिका को आर्त्त स्वर में पुकार रहा हो। मैं इस धुन में खो-सा गया था कि अचानक मेरे मित्र दीपक ने मुझे झकझोरा। वो इन दिलकश नज़ारों के साथ 'सेल्फी' लेना चाहते थे। कैमरे में कैद होकर एक बार फिर सब अपनी मंजिल की तरफ रवाना हुए। हम 6 घंटों से लगातार बढ़े जा रहे थे लेकिन किसी के

चेहरे पर थकान की शिकन तक न थी। चीड़ के पेड़ों से निकलती खुशबू हमें मदहोश कर रही थी। अचानक एक जगह गाड़ी रुकी और वहाँ पत्थर से बने प्रवेश-द्वार पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे ये शब्द - ''श्रीरीठा साहिब में आपका स्वागत है'' ने हमारे दिल को सुकून पहुँचाया। गुरुद्वारा श्री नानकमत्ता साहिब से श्रीरीठा साहिब खटीमा, टनकपुर, चम्पावत, लोहाघाट, धूनाघाट होते हुए हम लगातार 7 घंटे की यात्रा के बाद पहुँचे। गुरुद्वारे का केसरिया 'निशान साहब' दूर से ही लहलहाता नजर आ रहा था। वाह! कितनी रमणीय और शाँत जगह थी। चारों तरफ दूर-दूर तक पहाड़-ही-पहाड़, ऐसा लग रहा था मानो प्रकृति ने श्रीरीठा साहिब को अपनी गोद में जगह दी हो। कहते हैं यहाँ के रीठे गुरु महाराज की कृपादृष्टि से अत्यंत मीठे हो गए थे। इसलिए इस पावन तीर्थ का नाम रीठा साहिब पड़ा। गाड़ी से उतरकर हमने सर्वप्रथम मत्था टेका और लंगर छका। फिर दौड़ पड़े हम और दीपक प्रकृति के आगोश में समाने। गुरुद्वारे के पीछे दो नदियों ''लतिया और रतिया'' का संगम विहंगम नजारा पेश कर रहीं थीं। कुछ देर बाद गुरदीप मैम, गिल सर एवं हमारे अन्य मित्र भी वहाँ पहुँचे। गिल सर अपनी चिरपरिचित भाव-भंगिमाओं के साथ फोटोग्राफी करवा रहे थे। कुछ ही देर में सूरज ढला और हल्का धुंधलका-सा छा गया। हम सब गुरुद्वारे लौट गए। फिर सबने साथ में लंगर किया और अपने-अपने कमरे की तरफ चल दिए। लेकिन किसी की आँखों में नींद कहाँ, वादियों के अदभुत नजारे सबकी आँखों के सामने सिनेमा की तरह घूम रहे थे। कुछ ही देर में कुनकुनी-सी ठंड महसूस हुई और मैं कंबल के नीचे सरक गया। बगल में सोए मित्र दीपक तो अपनी खुशियों को फेसबुक और व्हाट्सएप के जरिए सबसे साझा करने में लगे थे। सुबह हमें यहाँ से निकलना था। अगली सुबह हमारी जिंदगी में एक और खूबसूरत सुबह लेकर आयी। पहाड़ों पर पड़ती सूर्य की लालिमा, चारों तरफ से उठती चहचहाहटें, गुरुद्वारें में मधुर लय में होते गुरुकीर्त्तन ने हमें दृश्य और श्रव्य हर तरह से मंत्रमुग्ध कर दिया। इस जगह को छोड़ कर जाने का मन शायद ही किसी को हो, पर हमें तो लौटना ही था। सबने बारी-बारी से जाकर मत्था टेका और जत्थेदार साहब से मीठे रीठे का प्रसाद ग्रहण किया। भाटी मन से सब गाड़ी में बैठे और यादों को संजोते हुए नानकमत्ता के लिए रवाना हुए। नानकमत्ता में करीब एक घंटा रुकने के बाद हम सब दिल्ली के लिए निकल पड़े। खुशी थी कि हमने स्वर्ग को काफी करीब से महसूस किया, दु:ख था कि हमारा स्वर्ग पीछे छूटता जा रहा था। अगली सुबह हमारी दिल्ली में हुई और हम प्रकृति की गोद में से निकलकर मनुष्य-रूपी पत्थरों के बीच आ गए। यह यात्रा मेरी जिंदगी-रूपी किताब के सुनहरे पन्नों में से एक रहेगी। गुरुजी आपके बुलावे का फिर से इंतजार रहेगा।

जो बोले सो निहाल
सत् श्री अकाल!

-अमन आकाश,
हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार
द्वितीय वर्ष

भूमण्डलीकरण के दौर में गुरु गोबिंद सिंह जी के काव्य की सार्थकता

आज तीव्र विकास की अंधी दौड़ में भूमण्डलीकरण के नाम पर साम्राज्यवादी ताकतें पूरे विश्व पर अपना एकमात्र साम्राज्य कायम करना चाहती हैं। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, साँस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में अपना वर्चस्व बनाना चाहती हैं। अगर हम गुरु गोबिंद सिंह के समय की तुलना आज के भूमण्डलीकरण के युग से करें; तो बहुत सारी समानताएँ देखने कों मिलती हैं।

गुरुजी युगीन भारत का इतिहास मुगल राजनीति के पराभव, सामाजिक अधपतन, धार्मिक विकृतियों तथा मानवीय मूल्यों के ह्रास का काल है। भारत उस समय धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और साँस्कृतिक दृष्टियों से पतन की ओर अग्रसर था। ऐसे में भारत राष्ट्र की अस्मिता को बचाने के लिए गुरुजी ने निरुत्साहित जनता में नवीन चेतना और उत्साह का संचार किया। उन्होंने मानवीय मूल्यों के पतन की प्रवृत्तियों के विरोध स्वरूप एक नवीन चेतना का संचार समाज में किया। इसी नई साँस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक चेतना द्वारा मानवीय मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित कर समाज में प्रेम और सद्भाव की भावना को मुखरित करने का सफल प्रयास किया।

आज के भूमण्डलीकरण के समय में जो मानवीय मूल्य पैसा कमाने की अंधी दौड़ में गिरते जा रहे हैं, सभी रिश्ते-नाते पैसे की धुरी पर सिमटते नजर आ रहे हैं। पैसा कमाने की ऐसी दौड़-सी लग गयी है मनुष्य आज मानव-मूल्यों को भूलकर मुनाफा कमाने की लालच में दिन-प्रतिदिन फंसता जा रहा है। जिस तरह से आज अनियोजित औद्योगिकरण और बाजारवृति वाली बहुराष्ट्रीय संस्कृति टैकनालोजी के माध्यम से विकसित हो रही है। उसमें यन्त्रों की स्वतंत्रता, मनुष्य की स्वतंत्रता को सीमित करती जा रही है। इस ने संचार क्रांति के जरिये हमारे घरों में घुसकर हमारे हृदय और मस्तिष्क पर अपना अधिकार कायम कर लिया है। जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य की पुरानी मान्यताएँ, जीवनमूल्य, सामाजिक सरोकार खंडित होते जा रहे हैं। ऐसे विकट समय में पुरानी मान्यताएँ, जीवन-मूल्यों, सामाजिक सरोकारों को फिर जीवित करने के लिए एक ऐसे गुरु गोबिंद सिंह की तलाश है जो अपनी लेखनी और कर्म से युग को बदलने का सामर्थ्य रखता हो। जो अपनी अद्वितीय प्रतिभा और विलक्षण समन्वयात्मक प्रवृति से मानवता की सेवा करने में तत्पर हो।

गुरुजी ने सामाजिक संगठन का एक व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने 13 अप्रैल 1699 में आनंदपुर साहिब के केशगढ़ मैदान में समाज के विभिन्न वर्गों, जातियों एवं संप्रदायों के लोगों को एकत्रित होने का आह्वान किया। अपने जीवन में उन्होंने समाज के लिए उपयोगी अनुभूत उद्देश्यों को सबके सामने रखा और एक नवीन संगठन 'खालसा पंथ' की स्थापना की और एक नई सामाजिकता का ऐतिहासिक सूत्रापत किया।

भूमण्डलीकृत बाजार स्थानीय संस्कृति पर सर्वाधिक प्रहार कर रहा है। लगभग उसी तरह जिस प्रकार गुरुजी के समय औरंगजेब ने किया था। औरंगजेब के गद्दी पर आसीन होते ही भारतीय संस्कृति के एकात्मकता के ह्रास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी। मुस्लिम राज्य की स्थापना के उद्देश्य से प्रेरित होकर हिन्दुओं को धर्म परिवर्त्तन के लिए प्रेरित किया जा रहा था और जबर्दस्ती उन्हें अपना धर्म परिवर्त्तन करने के लिए बाध्य किया जा रहा था। उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जा रहे थे। ऐसे समय में गुरुजी ने सामान्य धर्म भीरू हिन्दुओं में से ही राजा उत्पन्न करने तथा उन्हें राज करने की रीति सिखाकर सरदार बनाने तथा उन्हें सवा लाख से अकेले जूझने के लिए प्रेरित किया-

भेड़ों को मैं शेर बनाऊँ
राजन के संग रंक लड़ाऊँ।
भूप गरीबन को कहवाऊँ
चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ।
सवा लाख से ऐक लड़ाऊँ
तबै गोबिन्द सिंह नाम कहाऊँ।
इन्हीं से राजे उपजाऊँ
राज करन की रीति सिखाऊँ।
इन्हीं को सरदार बनाऊँ
तबै गोबिन्द सिंह नाम कहाऊँ।

अत: भूमण्डलीकृत बाजार के इस दौर में धार्मिक और साँस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न, गुरुजी की तरह संप्रभुता में देखने और परखने की जरूरत है। क्योंकि गुरुजी ने धार्मिक रुचियों और साम्राज्यवाद युगीन धार्मिक विकृतियों से एक साथ संबंध करते हुए, जातीय चेतना और धार्मिक एकता को विकसित किया। गुरुजी का मानना था कि मानवता की रक्षा करना ही मनुष्य के जीवन का सर्वोत्तम प्रयोजन होता है। अत: उनके जीवन का लक्ष्य मानव मात्र के लिए पथ-प्रदर्शक तथा मानवता की सेवा का रहा है। उनका कहना था कि ईश्वर किसी एक का नहीं वरन् समस्त मानवता का प्रतिपालक होता है; वह किसी जाति या धर्म विशेष का नहीं होता। अत: मानवता के रास्ते में घृणा, द्वेष, वैर भाव व ऊँच-नीच का कोई काम नहीं होता। मानवता, समानता तथा इंसानियत के भाव पर आधरित होती है और सहनशीलता का पाठ पढ़ाती है। गुरुजी बार बार यही उपदेश देते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति केवल सच्चे प्रेम से ही संभव है। प्रेम और भावना के बिना उस परमात्मा के रहस्य को जान पाना असंभव है-

वेद पुरान कतेब कुरान हसेब थके कर हाथ न आये।
पूरन प्रेम प्रमात बिना पति सिउ किन स्त्री पदमापति पाए।।

अत: गुरु गोबिंद सिंह जी के समय की आत्मनिर्भरता और धार्मिक एकता का विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय के दौर में था। कारण, भूमण्डलीकरण के प्रभाव से पिछले दस वर्षों में साम्प्रदायिकता ने समाज में बड़ी भारी घुसपैठ की हैं। इसी के कारण समाज में असमानता बढ़ी है। पूंजीपति वर्ग जयादा अमीर हुआ है तथा अन्य वर्ग आर्थिक रूप से पिछड़ गए हैं। इसी के कारण क्षेत्रवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिक दंगे, महिलाओं पर अत्याचार जैसे अनेक मामले सामने आये हैं।

सारांश यह है कि आज भारत में जिस अर्थ में भूमण्डलीकरण का विस्तार हो रहा है, उसमें हमें अपनी परम्परा, एकता, सृजनात्मक चेतना और भविष्य निर्माण के सपनों से काटकर अलग किया जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति को दिन-प्रतिदिन बढ़ावा मिल रहा है। एक नवपूँजीवाद जन्म ले रहा है। यह पुराने पूँजीवाद से भिन्न है, यह सेनाओं की सहायता लेकर देश की सीमाओं पर उपनिवेश कायम नहीं करता, वरन् कम्प्यूटर, ईमेल, इन्टरनेट, टी.वी. चैनलों आदि सूचनाओं की उन्नत तकनीक से चुपचाप हमारे घरों में घुसकर अपना साम्राज्य कायम कर लेता है। इसी के परिणामस्वरूप पाश्चात्य संस्कृति की हम पर हावी होने लगी है। हम उनकी संस्कृति की अंधी नकल करके अपने को शिक्षित मानने लगे हैं। संक्षेप में कहें तो भूमण्डलीकरण से पैदा हुई साम्प्रदायिकता के इस दौर में गुरुजी की धार्मिक सम्प्रभुता का विचार न केवल समाज में जनहित की दृष्टि से; बल्कि व्यवस्था को बदलने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

-डॉ. हरदीप कौर
असिस्टंट प्रोफेसर हिन्दी-विभाग

अभिशप्त बचपन

(पुरस्कृत रचना)

सड़कों पर भीख माँगते बच्चों को देख
न गुस्सा आता है न प्यार !
बस खड़ा होता है-एक प्रश्नचिह्न
क्यों बेबस-सी है हमारी सरकार?

बचपन, मानव जीवन की जड़। इस समय इस जड़ को जैसे सींचित किया जाएगा, ये ताउम्र उसी तरह पुष्पित-पल्लवित होते रहेंगे। बड़ी अच्छी कहावत है-बच्चे भगवान का रूप होते हैं। फिर मंदिर के पत्थर भगवान को लाखों का चढ़ावा और जीते-जागते भगवान को दुत्कार-फटकार! देश की राजधानी की सड़कों पर गुजरते हुए कई दफे आपको ये दृश्य देखने को मिलेंगे। ट्रैफिक जाम में बंद कारों और ऑटो में झाँकते 8-14 औसत उम्र के बच्चे। कई बार उन्हें कुछ सिक्के मिल जाते हैं; तो कई बार उनकी माँ-बहनों को इस तरह की भाषा से संबोधित किया जाता है कि आप पानी-पानी हो जाएँ।

जी हाँ, यह दु:खद वाकया उस देश का है जहाँ के 'बचपन बचाओ आँदोलन' के पुरोधा कैलाश सत्यार्थी जी को विश्वप्रतिष्ठित नोबेल पुरस्कार मिल चुका है। प्रश्न उठता है कि आख़िर ये बच्चे हैं कौन? ठिठुरती ठंड, चिलचिलाती धूप और झंझावती बारिशों में भी अधनंगे होकर सड़कों पर चंद सिक्कों के लिए गिड़गिड़ाते हैं। कुछ गैर सरकारी संस्थाओं की मानें तो वर्ष 2008 से 2010 के बीच पूरे देश से 1,17,480 बच्चे ग़ायब हुए हैं। बच्चों के विकास पर कार्यरत् संस्था 'प्रयास' का कहना है कि अकेले वर्ष 2014 में दिल्ली से 6000 बच्चे गायब हुए है। इन बच्चों को बेचकर जबरन भीख मँगाने, बंधुआ मजदूरी करने और वेश्यावृत्ति जैसे घृणित कामों में धकेल दिया जाता है। 'प्रयास' के संयोजक का कहना है कि इस बाबत उन्होंने कई बार शासन-प्रशासन को अर्जियाँ दी लेकिन नतीजा वही ढाक के तीन पात। आंध्र-प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों से खरीदकर लाए गए बच्चे गिरोहों की चपेट में आकर इस नारकीय दलदल में फँस जाते हैं। जबरन भीख मंगवाने वाले इन गिरोहों से बचकर भागा एक बच्चा सलाखों से दागी अपनी पीठ को दिखाकर कहता है कि वो लोग बहुत मारते है, जब हम 200-250 से कम माँगकर ले जाते हैं।

जिस शिद्दत से इन गिरोहों का कारोबार फल-फूल रहा है, मेरे ख्याल से 'बचपन डुबाओ आँदोलन' के लिए इन के सरदार को भी नोबेल मिलना चाहिए!

माननीय कैलाश सत्यार्थीजी ने देश के मुख्य न्यायाधीश को भी चिट्ठी लिखी है। कई सरकारी-गैर सरकारी संस्थाएँ भी इस क्षेत्र में जोर-शोर से काम कर रही हैं, नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका हैं लेकिन...?

इस प्रश्न का जवाब हमें अंतर्मन से माँगना है कि क्या सचमुच बाल भिक्षुकों शर्म आ रही है बाल-गोपाल को 'भिखारी' शब्द से संबोधित करते हुए की स्थितियाँ सुधरी हैं? क्या अब सचमुच दिल्ली की सड़कों पर मैले-कुचैले-अधनंगे बच्चे नहीं दिखते? क्या पुलिस उन्हें अब माँ-बहिन जैसे कुविशेषणों से संबोधित नहीं करती? क्या कार वाले उन्हें देखकर अब मुँह नहीं फेरते? क्या सचमुच बचपन का अब दुर्दमन नहीं हो रहा?

इन प्रश्नों के जवाब मिलने पर आपको नोबेल पुरस्कार मुँह चिढ़ाता महसूस होगा। एक अनुभव बताता हूँ, शायद आप हँसें या हो सकता है आपको गुस्सा आए लेकिन बात सौ फीसदी सत्य है। नयी दिल्ली रेलवे स्टेशन के बाहर दो पोस्टर्स पर नज़र पड़ी। उत्सुकतावश पढ़ने लगा। ऊपर लगे पोस्टर का विवरण इस प्रकार था, एक सफेद-फाहे-से कुत्ते की तस्वीर, गायब होने का विवरण और बताने वाले को 10,000 रुपए की राशि। वहीं दूसरी तस्वीर एक 12-13 वर्षीय बच्चे की, गायब होने का ज़िक्र और बताने वाले को 2500 रुपए की इनामी राशि। क्या मानवता ज़ार-ज़ार नहीं रोती मनुपुत्र के इस अमानुषिक बँटवारे पर?

बेच दिया गया होगा वो बच्चा किसी गिरोह के हाथों और तथाकथित दिलवालों की इस दिल्ली में कहीं हाथ पसारकर खरी-खोटियाँ ले रहा होगा। यह प्रश्न अभी भी अनसुलझा है, बचपन को अभी भी रौंदा जा रहा है और नोबेल पुरस्कार नामक तमाचे की गूँज अभी भी मेरे कानों में अजीब-सी सनसनाहट लिए हुए है।

कहानी ज़ारी है...

-अमन आकाश
बी.ए. हिन्दी पत्रकारिता एवं जन संचार,
द्वितीय वर्ष

लूट के दिन

सन् 1894 में ब्रिटिश सरकार के द्वारा भूमि अधिग्रहण कानून लागू किया गया। इसे लागू करने का एकमात्र उद्देश्य ब्रिटिश कंपनियों को लाभ पहुँचाना था, भारतीय किसानों का हित नहीं। 1947 में भारत आजाद हुआ तो किसानों को इस कानून से मुक्ति की एक उम्मीद की किरण दिखी। आजादी के छियासठ साल बाद कई सामाजिक संगठनों और किसानों के अथक प्रयास के बाद 2013 में कानून संशोधित हुआ और कुछ हद तक किसानों के हित में लागू हुआ। 2014 में सत्ता परिवर्तन हुआ, अध्यादेश के जरिए भूमि अधिग्रहण कानून फिर बदला गया और हम वापस 1894 की उसी स्थिति में पहुँच गए। इस बीच भट्टा परसौल, नंदीग्राम, सिंगूर आदि कई जगहों पर किसानों की जमीन हड़पने की कोशिश हुई, टकराव हुआ और जान-माल का नुकसान भी। 2013 में उस समय की यूपीए सरकार ने 'उचित मुआवजा, भूमि अधिग्रहण में पारदर्शिता, पुनर्वास और पुनर्स्थापन के अधिकार अधिनियम, 2013' के जरिए भूमि अधिग्रहण के मामलों में किसानों के हितों का थोड़ा ख्याल रखा। हालांकि इस कानून को संपूर्ण न मान कर कई सामाजिक संगठनों ने इसमें और सुधार की माँग की। वर्तमान लोकसभा अध्यक्ष और तब इस कानून निर्माता समिति की अध्यक्ष रहीं सुमित्रा महाजन ने भी कहा था कि 'यह कानून भूमि अधिग्रहण को लेकर किसानों के हितों की रक्षा करने वाला सर्वश्रेष्ठ कानून तो नहीं, पर उस दिशा में एक सार्थक प्रयास जरूर है।' 2014 में अच्छे दिनों के नारों पर सवार होकर आई मोदी सरकार ने एक अध्यादेश के जरिए उन सभी प्रयासों पर पानी फेर दिया, जिनकी बदौलत किसानों को कुछ लाभ मिलने की आस जगी थी। 2013 के भूमि अधिग्रहण कानून में सरकारी और गैर-सरकारी उपयोग के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए क्रमशः उस क्षेत्र के सत्तर और अस्सी फीसदी किसानों से सहमति लेने का प्रावधान था, जो 2014 के अध्यादेश के द्वारा हटा दिया गया है। इस अध्यादेश के अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा, ग्रामीण आधारिक संरचना, जन-आवासीय परियोजना, औद्योगिक कॉरिडोर और सामाजिक आधारिक संरचना के लिए किसी भी जमीन को अधिग्रहीत किया जा सकता है। जबकि 2013 के कानून में बहुफसली जमीन का अधिग्रहण किसी भी हालत में नहीं हो सकता था, किसी भी अधिग्रहण से पहले वहाँ के पर्यावरण और समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन किया जाना आवश्यक था। ग्रामीण किसानों को बाजार मूल्य का चार गुणा और शहरी किसानों को बाजार मूल्य का दो गुणा मुआवजा देने का प्रावधान भी 2013 के कानून में था। इसके अलावा अगर जमीन अधिगृहीत होने के पाँच साल के अंदर उसका उपयोग नहीं होता तो उसे वापस किसानों को दिया जाना था। 2014 में राजग सरकार के मंत्रिमंडल द्वारा पारित अध्यादेश के जरिए किसानों के हित से संबंधित सभी प्रावधानों को हटा दिया गया है।

एक ऐसा कानून जो पक्ष-विपक्ष दोनों तरफ से सराहा गया हो, उसे अध्यादेश जैसी अलोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा बदल देना मोदी सरकार को शक के कठघरे में खड़ा करता है। हाल ही में दिल्ली में कुछ सामाजिक संगठनों और राजनीतिक दलों ने इस अध्यादेश को कानून न बनने देने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की और इसके खिलाफ सड़क से लेकर संसद तक अपनी आवाज बुलंद करने का आह्वान भी किया। लेकिन इस बीच सरकार भी संसद का संयुक्त सत्र बुला कर इस अध्यादेश को कानून बनाने की जुगत में लगी है। राज्यसभा में अल्पमत में होने के कारण दोनों सदनों में इस कानून को पास कराना सरकार के लिए संभव नहीं है। अब यह भारत की जनता को तय करना हैं कि वह सरकार की इन जन विरोधी नीतियों के खिलापफ सड़क पर आए या तथाकथित अच्छे दिन की खुमारी में मौन व्रत धारण कर जन विरोधी नीतियों का मूक समर्थन करे।

-बिपिन बिहारी दुबे
बी.ए. हिन्दी पत्रकारिता एवं जन संचार, द्वितीय वर्ष

द्वितीय वर्ष

माँ

(पुरस्कृत रचना)

'माँ', शब्दोच्चारण से ही वात्सल्य भाव की फुहारें हमारे मन-मस्तिष्क को सिंचित करने लगती हैं। माँ के अहसास को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। सकल सृष्टि के समूचे शब्दों को लेकर उसे माँ के लिए गढ़ा जाए तो नि:सन्देह शब्द कम पड़ जाएँगे। नवजात शिशु का प्रथम साक्षात्कार माँ से ही होता है। वह शिशु जो पानी भी नहीं पचा सकता, माँ के अमृत तुल्य दुग्धपान से अपना अस्तित्व बचा पाता है। उसकी कोमल अँगुलियाँ माँ के स्पर्श मात्र से ही खिल उठती हैं। इस दुनिया के लिए अपरिचित-अतिथि वह शिशु माँ के सान्निध्य और वरदहस्त से अपना वजूद बनाता है। माँ की अंगुलियों को थामकर उसके नन्हें पैर अपना संतुलन बनाते हैं। शिशु की अंतरात्मा से प्रस्फुटित पहला शब्द होता है 'माँ'। इस पावनोच्चारण के बाद ही वह बोलना सीखता है। शिशु की प्रथम गुरु होती है-माँ। उसके पथ पर दीपशिखा की तरह जलकर उसका मार्ग प्रशस्त करती है-माँ। वह अबोध बालक जब भी किसी मुसीबत में पड़ता है तो अनायास ही उसके मुँह से निकल पड़ता है-'माँ'। धीरे-धीरे वह शिशु बड़ा होने लगता है। अबोध बच्चा अब सयाना होने लगता है और पता नहीं किस विधाता ने इस पड़ाव का नाम सयाना रखा है जो बच्चे को माँ से दूर करता जाता है।

एक लघुकथा पेश कर रहा हूँ:-

झुर्रियों से भरा एक चेहरा, कमानी की तरह टेढ़ा शरीर, उम्र 80 साल,

नाम- माँ।

एक चमकता हुआ चेहरा, भरा-पूरा शरीर, उम्र-30 साल,

नाम- बेटा।

चारपाई पर लेटी कराहती माँ, बेटे से अपनी काँपती उंगली से एक तरफ ईशारा कर पूछती है- बेटा, वो क्या है?

बेटा - कौआ है।

माँ फिर पूछती है - बेटा, वो क्या है?

बेटा - कहा ना, कौआ है।

माँ, जिसे बुढ़ापे ने जकड़ रखा है। वो तमाम बीमारियों से ग्रसित है। उसकी खाँसियों से पतोहू को रात में नींद नहीं आती, पता नहीं किस जन्म की गलती के कारण एक बार फिर पूछ बैठती है- बेटा, वो क्या है?

बेटा (झल्लाकर) - कहा ना बुढ़िया कि कौआ है। चुप से पड़ी रह, नहीं तो....

काश कि माँ के आँखों से छलका वो आँसू बेटा देख पाता। माँ निस्तब्ध हो जाती है। कुछ क्षणों के बाद माँ की कांपती हुई आवाज बेटे के कानों में पड़ती है...बेटे, जब तू 4 साल का था ना, मैं तुम्हें गोद में लिए आँगन में बैठी थी। बगल में पेड़ पर कौवा बैठा था। तुमने मुझसे बीसियों बार पूछा होगा कि माँ वो क्या है? और मैंने हर बार तुम्हें प्यार से चूमते हुए कहा था कि बेटे वो कौआ है।

माँ का शरीर अब निस्तेज हो गया था।

कुछ ऐसी होती है माँ। एक माँ अपने चार बच्चों को संभाल लेती है, वहीं बुढ़ापे में उन चारों बच्चों से अकेली माँ नहीं संभलती। जमीन बँट जाती है, आसमाँ बँट जाता है, पर माँ...!!!

हा विधाता! क्या तुम्हारी रोशनाई के काले-स्याह रंग उस दिन खत्म नहीं हो गए होंगे, जब माँ बँटी होगी।

शायर मुनव्वर राणा की कुछ पंक्तियाँ एकाएक ज़ेहन में आ गयीं और पता नहीं क्यों आँख की कोर से एक पतली-पवित्र धारा फ1ट पड़ी।

'किसी के हिस्से में मकां आया,
किसी के हिस्से में दुकां आयी,
मैं घर में सबसे छोटा था,
मेरे हिस्से में माँ आयी।'

कितनी मनहूस रही होगी शायर साहब की वो लेखनी, जिसने गरलधर के रूप में उपर्युक्त पंक्तियों को कहीं उजागर किया होगा।

माँ मुझे माफ करना, मैं तुम्हारा बेटा कहलाने लायक अब नहीं रहा।

कुपुत्रो जायेत् क्वचिदपि कुमाता न भवति...

-अमन आकाश,
बी.ए. हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार, द्वितीय वर्ष

आखिरी दुआ

कथा जनवरी महीने के पूर्वार्ध की है। दिनचर्या के अनुसार सबेरे पास के रेलवे स्टेशन की ओर दौड़ने गई थी। नित्य की भाँति सबकुछ सामान्य था। रेलवे-स्टेशन को मुड़ने वाली सड़क के नुक्कड़ पर गली के कुत्ते ऊँघ रहे थे। नुक्कड़ से परे बने जंगलनुमा पार्क के घास पर ओस ठंड के मारे काँप रही थी। रात-भर आकाश में नक्षत्रों के बीच ऊँघ रहा चाँद भी थका-थका जान पड़ता था। सड़क पर भारी वाहन रह-रहकर तेज रफ़्तार से गुजर जाते। सड़क पर लगे लैंपों की पीली बत्ती में शाँत सड़क स्वर्णमयी लंकानगरी का भान करा रही थी। 'लेबर-टी' नामक चाय की दुकान, जो चौबीसों घंटे सेवा देने के कारण श्रमिक वर्ग का विशेष आकर्षण थी, के चूल्हे पर बीसियों बार चाय छान चुकी पत्ती फिर से कड़क रही थी। वास्तव में यह काफी प्यारी सुबह थी, सौम्य, शांत, जयशंकर प्रसाद विदित 'वरुणा-नदी' की 'शांत कछार' सी।

'अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!'

दौड़ने से शरीर का ताप वातावरण के ताप से अवश्य ही बढ़ गया था। ठंडी-ठंडी सुबह में अदरकयुक्त चाय वास्तव में चित्त को विश्राम देती है। रेलवे-ब्रिज के उस पार चाय की एक दुकान सबेरे खुल जाती है, एवं अदरक की चाय वहाँ की काफी कड़क होती है। रेलवे-पुल की सीढ़ी चढ़ने के लिए जैसे ही मैं मुड़ी कि एक असामान्य दृश्य लक्षित हुआ। तन पर एक फटी कमीज डाले, कमर पर लूँगी बाँधे एक अधेड़ खड़े-खड़े काँप रहे थे। श्याम वर्ण, पकी हुई नुकीली दाढ़ी जिसे पिछले हफ्ते बनाया गया हो, आधे सिर पर बाल, खाली पैर, गिजबिज-गिजबिज आँखें, मुश्किल से खड़े हो पा रहे थे। मुद्रा अवश्य ही भिक्षुकों सी थी। वैसे तो नित्य ही एकाध भिखारी इस छोटे-से स्टेशन पर मिल जाते, पर न जाने क्यों उसने ध्यानाकर्षित किया। कारण शायद इनके अंदाज का नाटकीय न होकर प्राकृतिक हो। खैर, मैं मुखातिब हुई। पॉकेट से एक गर्म नोट निकालकर उनके हाथों को गर्माहट की हल्की आँच देने से मन को सुकून मिला। मानस पर बचपन में रटा एक श्लोक स्मरित हो आया-

'अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलं।'

बातचीत आंरभ की।
'आप कहाँ से हैं बाबा?'
'मैं...मैं...अलीगढ़...वो जो...'
'आप यहाँ क्या करते है?'
'.....'
'आप घर नहीं जाते?'
'नहीं। आँखें खराब हुईं। इलाज में सारा जमीन बिक गया।'
'यहाँ कहाँ रहते हैं?'
'वो कोने पर बने पार्क में। मेरे साथ .... मेरी पत्नी भी रहती है। आज कपड़े धुलने है। इसीलिए.....'

थोड़ी देर मैं चुप रही। वे काँपते हुए खड़े रहे। लोग कहते हैं आँखें दिल की आवाज होती है। मैंने उनकी आँखों में झाँकने की कोशिश की। वहाँ केवल अँधेरा था। गिजबिज-गिजबिज, अँधेरा। कभी-कभी 'समाज कल्याण विभाग' की आँखों की तरह ये आँखे भी हल्की खुलती, फिर केवल हिल-हिलकर अपने वजूद का भान देती।

मैंने प्रश्नों से उन्हें कुरेदना छोड़ दिया। आगे बढ़ चली।

'इंशा अल्लाह...आपको सलामत रखे...
घर में खूब बरक्कते हों...'

पीछे दुआओं की झड़ी शुरू हो चुकी थी। एक-एक कदम बढ़ाना दूभर होने लगा।

खैर, कुछ पल चित्त को अशांत कर बात आई-गई हो गई। मैं भी इसे नियति का क्रूर रूप मान बैठी। घटना ने दूसरे दिन परेशान करना शुरु किया, जब किसी पत्रिका में 'बुजुर्ग एवं ओल्ड-एज होम' शीर्षक से लेख पढ़ा झट इंटरनेट पर शहर के 'ओल्ड-एज होम्स' की सूचनाएँ एवं संपर्क इकट्ठा करना शुरु किया। तीन-चार की जानकारी एवं पता नोट कर तीसरे दिन सुबह रेलवे-पुल की सीढ़ियों पर पहुँची। वहाँ कोई नहीं था। पूरा स्टेशन देख चुकी, लोग थे, भिखारी थे, पर वो गिजबिज आँखों वाले बुजुर्ग न थे। नुक्कड़ पर बनी जंगलनुमा पार्क के एक कोने में कुछ फटे चीथड़े पड़े थे। जलकर काला स्याह कोयला बन चुकी कुछ लकड़ियाँ थी, राख थी, वो कहीं न थे।

बुझे मन से घर वापस गई। मन बहलाने हेतु अखबार खोल 'ताजा' के नाम पर परोसी जा रही 'बासी' खबरों में मन रमाने लगी। अंदर के एक पृष्ठ के कोने में वही गिजबिज आँखें दिख गयीं। ऊपर छपा था - 'अज्ञात की पहचान'। मन सन्न रह गया। पूरा पढ़ने की हिम्मत न हुई। बस कुछ शब्द कानों में गुँजने लगे- 'अल्लाह... आपको सलामत रखे....'

...घर में खूब बरक़त हो...।

-शिवांजलि पांडेय
बी.ए. हिन्दी (विशेष), प्रथम वर्ष

चिंता

आधुनिक भारतीय लोकवादियों एवं विचारकों के जेहन में दो चिंताएँ समानातंर चल रही हैं-नारी-चिंता एवं कृषक-चिंता। दोनों ही चिंताएँ वाजिब एवं काल से प्रेरित है। दोनों ही चिंताओं पर चिंतन अत्यावश्यक भी है। वस्तुत: चिंता के दोनों विषय समाज एवं समाज से मिलकर बने देश के समाज व्यवस्था, जन व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था का आदिकाल से चिंतक रहा है। चिंतक का चिंता का कारण बनना, वास्तव में चिंता का कारण बनना, वास्तव में चिंता की बात है, एवं आपसी गठजोड़ों-हठजोड़ों को त्याग इस विषय पर चिंतन हेतु भिन्न-भिन्न समुदायों, राजनीतिक ढलों, धर्म-प्रचारकों एवं समाज सेवियों को आगे आना चाहिए। दिग्भ्रमित भारतीय मीडिया, जो राजनीति की अलग-अलग 'थ्योरियों' एवं 'कैलकुलेशनों' के मकड़-जाल में उलझती ही जा रही हैं, यदा-कदा भूलवश कुंभकर्ण निद्रा से जो जागृत हो पुन: चिर निद्रा को प्राप्त हो जाती हैं, की इस दिशा में भूमिकाएँ भी चिंता का सबब बनती जा रही। प्रिंट-मीडिया ने अवश्य ही इस दिशा में कार्य किया है, पर 'संपादकीय' पृष्ठ तक ही। मुख्य-पृष्ठ रंगानुभवों एवं 'एडवर्टाइजों' से सज्जित होकर मुँह चिढ़ाता है।

'यत्रा नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्रा देवता:।'
सदृश दूरगामी प्रभाव छोड़ने वाला संस्कृत साहित्य
नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।।

छंदो से आवृत्त हिन्दी साहित्य के मर्म को लोगों ने वर्णित साहित्यों के संग-संग भुला देने का असफल कोशिश की।

ज्ञानं भार: क्रिया विना
से प्रेरित होकर प्राप्त ज्ञान को भार बना लेता चिंता के कारण फूली मस्तक की नसों को और फुलाती है।

संसार के समस्त चरों में नारी के एक अंश होने से इनकार नहीं किया जा सकता। मानव हृदय के ही कोमलकांत भाग को नारी कहते है। ज्ञातव्य हो, मानव-शरीर के महत्त्वपूर्ण भाग, जिसे हम कम्प्यूटरीकृत भाषा में 'सॉफ्टवेयर' कह सकते हैं, कोमलकांत ही है। अवश्य ही स्त्री मन का मर्म-ताड़न कटना उन कोमलांगों का हनन है, जो संपूर्ण मानवीय सभ्यता के लिए आत्मदाह साबित होगा। 'स्त्री' शब्द से अभिप्राय केवल पुरुषों से विपरीत लिंग मात्र से नहीं, स्त्री संज्ञा मात्र नहीं, वह चिर जाग्रत भाव है, उसकी एक स्वतंत्र सत्ता है, जिसके बिना इस ब्रह्माण्ड की संकल्पना ही नहीं की जा सकती।

अवश्य ही हमने संपूर्ण ज्ञान को 'भार' बना लिया है, तभी तो सब ज्ञात होने पर भी अज्ञात है। तभी तो सैकड़ों नारी-मन अँधेरों में कलपती हैं। तभी तो नारी 'चिंतक' नहीं 'चिंता' बन जाती है। तभी तो हम 'अंतर्राष्ट्रीय महिला-दिवस' एवं भिन्न-भिन्न संवैधानिक दाँव-पेंचों की आड़ में सदैव उसे दबा कर रखना चाहते हैं। तभी तो निज अंदर जन्म लेते 'रावण' का हम दहन नहीं कर पाते, केवल और केवल वहन करते हैं। तभी तो हम वात्सल्य को भूल जाते हैं, तभी तो हमें कलाई पर बँधी राखी नजर नहीं आती, तभी तो किसी की माँग में भरे सिंदूर का रक्त-वर्ण हमें नहीं दिखता। हमने अपनी याद्दाश्त के साथ-साथ अपनी दृष्टि भी खो दी है। अब हम-

'मर्त्यलोके भुवि भार भूता:'
बनकर रह गए। हम
'मनुष्यरूपे मृगाश्चरन्ति'

अब हम मनुष्य के रूप में जानवर हो गए, हम सामाजिक नहीं रहे। हमारी भारत-माता जरावस्था को प्राप्त होकर किसी वृद्धाश्रम में आखिरी साँस गिन रही। उनके पेंशन पर गुलछर्रे उड़ाने वाले एक प्राणी मात्र बनकर हम रह गए हैं। हम बस चीखना जानते हैं, जोर-जोर से बोलना जानते हैं, आँखें दिखाना जानते हैं, मुँह फुलाना जानते हैं और चिंता करना जानते हैं।
भारत-माता की जय!

-दीपक कुमार मिश्र
बी.ए. हिन्दी (विशेष), द्वितीय वर्ष

शहर बदल गया है

घूमने निकला देखा गलियों में कुछ बदल गया है। देखता हूँ, आजकल अपना शहर बदल गया है। नुक्कड़ों-चौराहों पर आज नजारा कुछ और है, कोई महापुरुष यहाँ फिर मूर्त्ति में ढल गया है। लुकाछिपी दौड़-भाग, बच्चों की मस्तियाँ गुम हुई। खेल का मैदान, पार्किंग स्थल में बदल गया है। सड़कों ने चौड़ी होकर पेड़ों को लील लिया है। पैसा खो गया कहीं, आजकल नोट चल गया है खेत-खेत टुकड़े होकर बँटते ही जा रहे हैं।

हर हिस्सा अब यहाँ, महँगा प्लॉट बन गया है। गाड़ियों का शोर और धुएँ से भरी शाम है- बस। सूरज भी शहर में, आज जैसे जल्दी ढल गया है। भीड़ भी है फिर भी कहीं अपना नहीं दिखता कोई, कहीं दिखता भी जो अगर तो आँख चुरा कर निकल गया है। इमारतों में मानों ऊँचा उठने की होड़ मची है। गरीब का झोपड़ा भी यहाँ कहीं दब-सा गया है। हर कोई दिखता है- बस भागता हुआ सा। यहाँ शहर के साथ शायद इंसान भी बदल गया है।

-रंजन कुमार सिंह
बी.ए. हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार, प्रथम वर्ष

समझो! जानो और पहचानो!!

हरनेक! समझो, जानो और पहचानो!!
क्या होता है कल, आज और कल?
जल ही बनता है बादल
और फिर बादल बन जाता जल।

हरनेक! समझो, जानो और पहचानो!!
क्या होता है सम्भव और असम्भव?
ज्ञान-कर्म से खुलती जाती हैं बंद राहें,
और एक दिन असम्भव ही हो जाता सम्भव।

हरनेक! समझो, जानो और पहचानो!!
क्या होती है सफलता और विफलता?
अड़चन-उलझन, संकट और समस्या
सार्थक चिन्तन-मनन कर्म से होते हैं दूर।
धीरे-धीरे हम सबको विफलता ही
पाठ पढ़ाती सफलता का।

-डॉ. हरनेक सिंह गिल
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

एक शाम मधुबन के नाम

आज की शाम मधुबन के नाम।
बैठा था चुपचाप-गुमनाम,
हौले से हवा चली, कुछ इस कदर
जिस पे सुना मैंने तेरा नाम.....

वो हवा ही कुछ और थी
फिजाओं में रंग संगीत के थिरके-थिरके से थे।
उसी रंग में रंग गई मेरी शाम।
एक शाम मधुबन के नाम...

लगा जैसे अरसा बीत गया,
संगीत की धुन सुने ज़माना बीत गया।
बैठा, उस शाम आरम्भ कर दिया
मैंने एक गीत गुनगनाना,
जिससे याद आ गई मुझे,
मेरी पूरी ज़िन्दगी, जिसमें था कभी,
मैं गुमनाम...
बस यही थी मेरी आज की शाम,
क्या करूँ? नहीं भूल पाया तुम्हारा नाम...
गया तो मैं सुबह था, पर लौटा देर शाम,,
जानती हो क्यूँ?
पूछोगी नहीं!

मधुबन के पत्ते-पत्ते पर, छापे-छापे पर
लिखा तुम्हारा नाम....
इसलिए हो गई मेरी शाम....
इस पर भी तू न मिली....
फिर से मैं हो गया गुमनाम....
एक शाम मधुबन के नाम।।

-विनय राजहिन्द
बी.ए. इतिहास (विशेष), प्रथम वर्ष

पेशावर अटैक

आज पड़ोसी का चूल्हा ठंडा है,
भूख हमारी भी मर गयी,
आज कुछ बस्ते स्कूल से घर नहीं जायेंगे
वो हमारा 26/11 था, आज तुम्हारा 16/12 है।।

क्या गलती थी, उन मासूमों की?
क्या खैरात थी उन आतंकों की?
क्यूँ समझाने पर भी इन्हें समझ नहीं आता?
कि जरूरत है अब, नफरत मिटाने की?
पर अब ये नफरत की आग कम होनी चाहिए
क्योंकि इसने एक बार भी नहीं सोचा ज़िंदगी बचाने को।

लालन है-उस हैवानियत पर
जो पनप रही इन आतंकियों के अन्दर,
जिसे एक बार भी गोली चलाते वक्त
तरस नहीं आया उन मासूमों के चेहरे पर,

अब पाकिस्तान कैसे उबरेगा इस अनंत दर्द से?
कैसे वह ला पाएगा एक बार हिम्मत फिर से?
पर उसे अब समझ जरूर आ गया होगा कि
ISIS किसी का नहीं होता,

132 बच्चों की जान को यूँ ही नहीं भूल पायेगा
बदला तो फिर भी कुछ नहीं है,
इन आतंकियों की ऐसी हालत करनी होगी कि
इनका चेहरा पहचान में नहीं आए।।

-प्रियंका सिंह
बी.ए. इतिहास (विशेष), प्रथम वर्ष

अपनी दुनिया मुझे

अपनी दुनिया मुझे
अपने हाथों से
अपने कैमरे के बल पर आप
सजानी है।
सबसे बेहतर अपनी
पहचान बनानी है।
काँटों पर भी चल कर
अपनी मंजिल हासिल
कर जानी है।
हौंसला कहीं टूट न जाए
अपने कहीं छूट न जाए।
कैमरे की आँख से।
नजारों को देखकर,
मन की आँखों से,
हजारों को देखकर,
एक नयी चेतना,
जगानी है-हर लम्हे में,
अपनी दुनिया मुझे, अपने कैमरे से
अपने हाथों से
अपने बल पर आप
सजानी है।

-शोभित गुप्ता
हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार, प्रथम वर्ष

भीख मांगते बच्चे

मैं तुम्हें देख रहा हूँ,
सदियों से नहीं, कुछ ही वर्षों से।
तुम छोटे बच्चे हो
शहरों की, मकानों की, सड़कों की
लाल बत्तियों पर
बिना रुके, बिना थके, मैंने देखा है
मानो तुम्हारे बचपन की ठोस थकान
पिघला दी गई हो,
भीख माँगने के तरल ठहराव में।
मैंने देखा है-
गर्मियों में,
शहर की अलकतराई सड़क पर
तुम्हारी छटपटाती प्यास को
बरसात में,
वाहनों की बाढ़ से
अतिक्रमित तुम्हारे शरीर को।
जाड़े में,
अपनी त्वचा का कंबल ओढ़े
तुम्हारे हड्डियों की ठिठुरन को
मैंने देखा है।
तुम्हारे बचपन के चेहरे पर,
टँके हुए बेबसी के मुँहासों को।
कहीं तुमने खुद तो नहीं सीख लिया
अपनी छोटी-छोटी चाहतों को थप्पड़ मारना।
मैंने सुना है- तुम्हारे क्रंदन को,
ज़रूर तुम्हें नींद से जगाकर,
बटोरे हुए तुम्हारे सिक्कों को
छीन लिया होगा किसी बच्चा-माफिया ने
क्या तुम्हें पता है?
तुम्हारी हथेलियों की जेब से
किस्मत की रेखाएँ किसने चुराई हैं।
सुना है कि
पुलिस, एन.जी.ओ और सरकार के लोग
उस चोर को ढूँढ रहे हैं।
मुझे पता है
कि तुम उनके खिलाफ नहीं लिखवाओगे,
कोई एफ.आई.आर.।
तुम्हें तो फुरसत ही नहीं है-
अपनी भूख की एफ.आई.आर.
चौराहे व सड़क के थानों में दर्ज करवाने से।
तुम एक हँसते-खेलते बच्चे से
भीख माँगने वाले बच्चे बन जाओगे।
दुनिया द्वारा पढ़ा तुम्हारा यह भाग्य
माफ करना,
आज सार्वजानिक हो गया है।

-राहुल रंजन
भीमराव अंबेडकर महाविद्यालय
सर्जनात्मक लेखन प्रतियोगिता

मासूम जान (पुरस्कृत रचना)

कोहरे से ढकी सड़क पर,
बच्चे काम पर जा रहे हैं।
क्या खत्म हो गए हैं-सभी स्कूल,
क्या गुम हो गए हैं-सभी खिलौने,
क्या भर गए हैं-सभी मैदान!

फिर, क्यों ये बच्चे हैं, सड़क पर,
क्यों दौड़ते हैं-ये गाड़ियों पर?

जिन हाथों में होनी चाहिए
आज पेंसिल,
हैं उनमें, झाड़ुओं की सीकें
वह कोमल हथेलियाँ, जो होनी चाहिए
चॉकलेट से भरी हुई,
है, वो फैली हुई, राहगीरों के सामने।
रोते बिलखते वो मासूम,
कोई तो सुनो उनकी चीख
वो डरते हैं, कराहते हैं,
फिर भी हँस पड़ते हैं।
इतनी मासूम जानों को,
न दो ऐसी सज़ा
कि थम जाएँ उनकी साँसे,
क्या, तब आएगा तुम्हें मज़ा?

जिन होठों पर होनी चाहिए मुस्कान
की दस्तक,
है उन पर आज गालियों की गूँज।
कोई तो रोको, इसे,
कोई तो टोको इसे।
देश की मासूम जान है, वो
खुदा का नन्हा पैगाम है, वो
कोई तो बचाओ इनका बचपन,
तभी तो लहराएगा अपना परचम।

–अनामिका, इन्द्रप्रस्थ कॉलेज

प्रेरणा

तू कर चल, यूँ बढ़ चल।
इस दुनिया को दिखा चल।
तुझमें वो जुनून है,

जिसको किसी ने देखा नहीं,
उस जुनून में दुनिया को,
अपने करतब दिखा चल।

तू क्यूँ थका हुआ, बेबस दिखता है,
तू क्यूँ इतना कमजोर, क्षीण दिखता है,
तुझमें वो ताकत है जो दुनिया को बदल दे।

तू कर चल, यूँ बढ़ चल,
इस दुनिया को दिखा चल।

सूरज अपनी किरणों से दुनिया को सुख देता है,
तू भी अपने कर्मों से दुनिया को गति दे दे।

तू कर चल, यूँ बढ़ चल,
इस दुनिया को दिखा चल।

दुनिया कहती है कौन मसीहा आएगा,
तू दुनिया का मसीहा बनकर दुनिया को बदल दे।

तू कर चल, यूँ बढ़ चल,
इस दुनिया को दिखा चल।

–मनीषा शर्मा
बी.ए. गणित (विशेष),
द्वितीय वर्ष

क्या कसूर है मेरा?

(पुरस्कृत रचना)

बस इतना-सा सवाल है मेरा,
कि क्या कसूर है मेरा?
न पहनने को कपड़े, न रहने को बसेरा
आखिर ऐसा भी क्या कसूर है मेरा?

नहीं चाहिए मुझे स्कूल की किताबें,
और न शिक्षा का अनमोल खज़ाना।
बस इतनी सी आशा है मेरी,
हर रोज मिल सके,
दो वक्त के भोजन का ठिकाना।
हर रोज सोते हैं भूखे पेट, कोई और कैसे समझे
कि ये भूख देती भी है- दर्द घनेरा।
आखिर ऐसा भी क्या कसूर है मेरा?

हमारे नसीब में है, बस दर-दर की ठोकरे।
इस सड़क पर आती-जाती हैं-अनगिनत मोटरें,
खटखटाती है, मेरी माँ हर मोटरकार का द्वार,
पर उसे मिलती है बस लोगों की फटकार
हमारे हिस्से में क्यों नहीं है कोई प्यार?
हमारी झोली में क्यों आती है हर बार दुत्कार?
न जाने कब आयेगा हमारे यहाँ खुशियों का सवेरा,
न जाने कब हटेगा ये घना अँधेरा।
आखिर ऐसा भी क्या कसूर है मेरा?

कहते हैं- अबकी बार आयेगी कोई अच्छी सरकार,
हम जैसे गरीबों को भी मिलेगा अपना घर द्वार।
नहीं रहेगा अब सड़कों पर रहने को मजबूर।
सबकी गरीबी हो जाऐगी अब कोसों दूर।
मैंने सोचा बरसेगा हम पर भगवान का वरदान।
हम भी हो जाएँगे खुश, करके मतदान।
सोचा था अब हटेगा दु:खों का अँधेरा
हे भगवान! लाख-लाख शुक्र है तेरा।
पर चुनाव के बाद
नई सरकार के बाद
हमारे हालात हो गए और गंभीर
गरीबी में ही सिमट के रह गई हमारी तकदीर।
अब जब निकलती है-
सड़कों से नई सरकार की कार,
भगा दिया जाता है
हमें सड़को से छीनकर हमारा घर द्वार।
अब तो हमें हो गया यकीन,
पैसे वालों की ही है सरकार।
हमारे हिस्से में है बस डाँट और
अपमान की फटकार।

न आएगा अब कोई आशाओं का सवेरा,
हमेशा थी, हमेशा है और हमेशा रहेगा
बस चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा।
फिर भी एक ही सवाल है मेरा,
आखिर ऐसा भी क्या कसूर है मेरा?
क्या आप बता सकते हैं कि
ऐसा भी क्या कसूर है मेरा
न पहनने को कपड़े, न रहने को बसेरा
आखिर ऐसा भी क्या कसूर है मेरा?

-आयुषी शुक्ला
शिवाजी कॉलेज

छवि तुम्हारी

वह पाषाण हृदय, वह द्वंद्व प्रतीक,
वह अद्‌भुत, वह अमूल्य छवि;
ऊपर से तेरा शर्माना।
वे सुंदरकाय विशाल नेत्र,
वह मंद-मंद मुस्कान कभी।
वो शालीन बातें तुम्हारी
उसपर भी किसी का मिट जाना।
यह सुंदर चाँद-सा मुखड़ा तेरा,
उस पर ये चाप-सी नखें,
वे सुंदर पलकें,
फिर चाँद का उसपर ढल जाना।
हम तुलना तुम्हारी किससे करें?
हर उपमा पर तुम भारी हो,
मन मचल जाता है तुम पर,
तुम सबसे प्यारी-प्यारी हो।
मन मग्न हुआ, जब से तुझको देखा
यह सत्य वचन, मैंने बोला।
पर शायद हम न उस काबिल,
प्रेम को तुमने न जाना,
पर सच्ची मुहब्बत करता हूँ,
मैं याद तुम्हें तो करता हूँ,
तुम याद मुझे भी कर लेना।

-शिवांजलि पांडेय
बी.ए. हिन्दी (विशेष), प्रथम वर्ष

आज़ादी हिन्दुस्तान की

हुआ आज़ाद जब देश मेरा था
जब मौत को गले लगाया हमारे वीर जवानों ने
जब हुआ आज़ाद देश मेरा था।।

न जाने कितनी बिखरी थी लाशें, हुई लहूलुहान थी
जो बिखरा था खून जमीन पर न हिन्दू का
न मुस्लिम का।
वो खून था मेरे हिन्दुस्तानियों का
जब हुआ आज़ाद देश मेरा था।।

कैसे हुए थे अपनों से अलग ये भूला
नहीं दिल अभी तक
मिल तो गई आज आज़ादी उन अँग्रेजों से
जिन्होंने आग लगाई हमारे घरों में थी
जब हुआ आज़ाद देश मेरा था।।

अपनो के खिलाफ ही उठे थे शस्त्र हाथों में
तब बहुत रोया ये दिल था
नहीं भूला यह दिल अभी तक
जब हुआ आज़ाद देश मेरा था।।

वर्षा लाली
बी.ए. हिन्दी विशेष, प्रथम वर्ष

ये दुनिया

चाय के प्याले के साथ,
सोचा जान लूँ देश का हाल
टीवी. का किया स्विच आन
लग गई खबरों की बौछार।
सात की मौत, स्कूली बच्चों से भरी वैन,
पुल से कूद गई।
तीन साल के बच्चे का अपहरण।
नामी-गिरामी अफसर के घर,
पाँच करोड़ का सोना ज़ब्त।
राजधानी शर्मसार,
तीन साल की बच्ची से हुआ
सामूहिक बलात्कार।
चाय की आखिरी घूँट भी
परेशान हुई।
मन बहलाने के लिए देखने की बजाए
एफ.एम. सुनना शुरू किया।
गाना बज रहा था-बाबुल की दुआएँ लेती जा,
जा तुझको सुखी संसार मिले।
सुनकर मन भड़का-ओ ड्रामेबाज बाप
किस बेटी की कर रहा तू बात!
उसी की, जिसे बोझ समझ कर
माँ की कोख में ही,
करा दिया था जिसका कत्ल।
दूसरा स्टेशन बदला
'भैया मेरे, राखी के बंधन को निभाना'
मन का कोई कोना भड़क उठा
कैसा भाई, कौन-सी बहिन?
वो भाई, जो ऑनर किलिंग के नाम पर
दे रहें बहिनों को मौत।
पर मैं भी कहाँ मानने वाला था,
सोचा, आज मैं मन बहला कर ही रहूँगा।
स्टेशन बदला, 'दम मारो दम, मिट जाए गम।'
गाना बज रहा था।
इस कमबख़्त ने तो दुखती रग पर हाथ रख दिया था-
मैंने भरे गले से गाया-
अरे मूर्ख, कहाँ से लाऊँ दम,
हवा में जहर घुला है,
सब्जी में कैमिकल घुला है।
दूध में सोडा घुला हुआ है।
अब तू ही बता बेदर्द,
कहाँ से लाऊँ दम।
तभी दूर कहीं लाउडस्पीकर पर बज रहा था,
"ओ जाने वाले, हो सके तो लौट के आना।"
मेरा भी अब तक
हाल-बेहाल हो चला था।
मैंने बचा-खुचा दम लगाकर
बेसुरी आवाज में चीख कर गा ही डाला,
"ये दुनिया, ये महफिल, मेरे काम की नहीं,
मेरे काम की नहीं।"

-जतिन ग्रोवर
बी.कॉम (विशेष),
प्रथम वर्ष

किसान की परेशानी

सर्दी की ठंडी में, गर्मियों की गर्मी में।
सह के बरफ की मार और गर्मी की झुलस।।
खेतों पर हल चलाता, पसीना बहता जाता।
खुद को तकलीफ पहुँचाता, अपनी बात बताता।।

जो भी अनाज उगाया, पूरा दाम न पाया।
कैसे करूँ गुजर, थोड़े से हैं कर।।
बच्चे भूखों चिल्लाते, उनका पेट न भर पाते।
खुद को तकलीफ पहुँचाता, अपनी बात बताता।।

माँ उनकी सिखलाती, अपना खाना खिलाती।
खुद भूखी सो जाती, बच्चों को न रुलाती।।
कब तक चलेगा ऐसे घर, थोड़े से हैं कर!
खुद को तकलीफ पहुँचाके,
बच्चे सुलाती खाना खिला के।।

अपना दुख कैसे बताऊँ, कब तक मैं सह पाऊँ?
जो भी फसल उगाता,
तूफान-बाढ़ में नष्ट हो जाता।।
खेतों में पसीना बहाया, मेहनत का फल न पाया।
खुद को तकलीफ पहुँचाता, अपनी बात बताता।।

क्या करूँ, क्या न करूँ, सिर पर बढ़ा है बोझ।
चिन्ता में मैं डूबे जाऊँ, कैसे करूँ गुजर हर रोज।।
जान पर आफत पड़ी है, चला करने समाधान।
खुद को तकलीफ पहुँचाता, अपनी बात बताता।।

दु:ख से हो परेशान, किसान चला आत्मदाह को।
राह चलते सोच रहा था, कौन रखेगा घर का ध्यान?
मेरे बाद कैसे चलेगा, मेरा अपना घर?
जाने कब से देखता होगा, रास्ता मेरा सुत।।
छोड़ गया दुनिया वो, लाचारी के मारे।
खुद को तकलीफ पहुँचाता, अपनी बात बताता।।

-पुनीत कुमार
बी.ए. हिन्दी (विशेष), द्वितीय वर्ष

पहचान हिंदी की हिंदी से

नमन हो तुझको ऐ हिंदी,
मन मगन हो बोलो-जय हिंदी।
है माता-पिता, है बहिन सखा,
है मेरा सारा जहाँ हिंदी।

हम मतवाले इस भाषा के
हर मुख-से होती बयाँ हिंदी।
है आन-मान अभिमान भरा,
हर भाषा में जवाँ हिंदी।

है हिंदी के कई रूप उनके,
ये हिंदी अपनी आली है।
हर एक हिंद की जान हिंदी,
हिंदी की छटा निराली है।

पश्चिम में इसका वंश बढ़ा,
ब्रज भाषा जिसकी रानी है!
हरियाणवी, बुंदेली कौरवी,
कन्नौजी शाखा पुरानी है।

हम बात करें गर पूरब की
अवधी ने राज जमाया है!
बघेली, छत्तीसगढ़ वाली पर,
लोगों ने स्नेह जताया है!

राजस्थानी की बात अलग,
यह बात नहीं अनजानी है!
मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती,
मालवी यहाँ महारानी है!

बिहार में बिखरी भोजपुरी
मगही भी चमचम करती है!
मैथिली भी सबकी प्यारी है,
लोगों के मन पर रमती है!

ये प्यारी नहीं बस अपनों की,
ये विदेशों में भी न्यारी है!
जिसे चाहा सारे जहाँ ने है,
वो हिंदी सिर्फ हमारी है!

है पहचान हिंद की हिंदी से,
है हिंदी के लिए खुदा हिंदी!
है हिंदी से ही हिन्दुस्तान,
मेरा तन, मन, धन और जान हिंदी!

-अमित कुमार श्रीवास्तव
बी.ए. हिन्दी (विशेष), द्वितीय वर्ष

मेरा गाँव

बड़ा भोला-सा, बड़ा प्यारा-सा
बड़ा सादा-सा, बड़ा सच्चा-सा।
तेरे शहर से तो मेरा गाँव अच्छा है।
वहाँ मैं अपने दादा के नाम से
जाना जाता हूँ।
और यहाँ मकान नम्बर से
पहचाना जाता हूँ।
शहर में कोठी है, बंगले हैं
और घर-घर में कार हैं।
वहाँ परिवार है और घर-घर में
संस्कार है, अपनों का दुलार है।
यहाँ चीखों की आवाज़े
दीवारों से टकराकर लौट जाती हैं।
वहाँ दूसरों की सिसकियाँ भी
अपनी हिचकियाँ बन जाती है।
बेचैन हो जाता यहाँ
वहाँ रात के अँधेरे में
आराम से सो जाता हूँ।
तेरे शहर के बाजारों को
मेरे गाँव के हाथों ने, हुनर से
बड़े मन से सजाया है
मेरे बिना तेरा शहर अधूरा है-
चलो पलट कर आज अपने
प्यार गाँव की ओर लौट चलें।

-अविनाश राय
बी.ए., अंतिम वर्ष

प्रकृति का सौन्दर्य

(पुरस्कृत रचना)

प्रकृति का यह जादू है,
मेरा मन बेकाबू है।।

चंचल, निर्मल, पवित्र-सी छाया,
छूती हर इंसान की काया।

झूमे जाता मेरे दिल का द्वारा,
देखा जो मैंने ये सुंदर नज़ारा।

प्रकृति का ये जादू है,
मेरा मन बेकाबू है।
पंख फैलाकर उड़ जाऊँ मैं,
उड़ जाऊँ हवा के संग।

मन का भँवरा कहता मुझसे,
बाहर निकल देख नया उजाला।

प्रकृति का ये जादू है,
मेरा मन बेकाबू है।

रोम-रोम मेरा खिल-खिल जाता,
देख तेरा ये रूप निराला।

सोचता हूँ मैं दिल ही दिल में,
क्या यही मेरे दिल की आशा।

प्रकृति का ये जादू है,
मेरा मन बेकाबू हैं।

क्या-क्या कहती हैं मुझसे ये,
सुंदर निर्मल, पवित्र सी छाया?

न देखूँ जो इसको तो,
दिल को मेरे चैन न आए।

प्रकृति का ये जादू है,
मेरा मन बेकाबू है।

-हेमन्त
बी.कॉम. प्रथम वर्ष

कृषक होली

रिमझिम बूँदे फाल्गुन की वो,
यौवन रंग में उमंग भरे जो,
आत्मदाह का कारण बनता,
कितने जीवन-ताड़न करता।

धन, गेहूँ, जौ, मटर की बाली,
रोम-रोम पुलकाते हैं।
बेमौसम फाल्गुन की वर्षा
यमदूत बन आते हैं।

आशा की वह धूमिल साया,
लेशमात्र जो शेष बची थी।
पवन-लहर संग मिटती जाती,
चमक नेत्र से लुटती जाती।

कान्हा खेले होली ब्रज में,
मथुरा और वृन्दावन में।
चीत्कारों संग अर्थी उठती,
एक किसान के आँगन में।

पगड़ी सिर की लाज, भले ही
फटा-पुराना गंदा था।
अंत-काल में झूला संग में,
बन गर्दन का फदा था।

मेरे श्रम से पेट फुलाते,
नारी छोड़ो, नर भी।
नौ महीने में 'जनादेश' ने,
छीन लिया वह वर भी।

'सरोगेट-मदर' बस धरती,
रक्त पिलाते हम ही।
गर्भपात की कठिन वेदना,
तोड़ देता जो दम ही।

जग में जितने भी अण-दाते,
अन्न भले हम से वे खाते,
भरे-पड़े अण से ये 'खाते'
कर्ज कौन? सहोदर भ्राते।

बज्र समान कठोर हृदय
क्या वज्रादपि?
घास-लता, पर स्वर्ण सम हैं,
ज्ञातव्य पूर्ण, यद्यपि।

रंग-भंग न प्रतिपाद्य, हे राधे!
चंद-छंद तो आने-जाने,
क्षमा क्षमा रंगरसिया कान्हे,
होली है! भई होली है!
बुरा न मानें।

-दीपक कुमार मिश्र
बी.ए. हिन्दी (विशेष), द्वितीय वर्ष

बलिदानें उमंग भरती हैं

हम कटे थे युग से
एकांत वन में मन शांत था।
अभिशप्त थे
वन में रमते, बोधिसत्व थे।
न शिकवा, न गिला,
बस कटे थे।

शिकवा तुम्हें-
'क्यों छँटे हो'
ठीक माना, पूछ बैठा-
'क्यों बँटे हो?'
नागवार तुम्हें।

सुलगा दिया बारूदें
पसलियों में।
बारूदों की चिमनियाँ
जिन सिसकियों में।
कलम हुए हम,
कलम टूटी हैं,
कलम चलेगी।
सूर्याभिव्यक्ति रश्मियाँ
चंद्राभिव्यक्ति चाँदनी
रोये ज़ार-ज़ार।

घृणा भी लज्जित हुई
द्वेष शर्मशार।

अभी व्यक्ति का अभिव्यक्ति
दुर्जेय।
हे कलमी! यह ज्ञेय कि-
बलिदानें उमंग भरती हैं।

जख्म शेष हैं
टपक-टपक जिनसे बूँद कुछ
नील वर्णा,
कागजों पर
छिटक-छिटक फेलती,
और बोलती
'अब न मिटेंगे।'
मिटाने की हर कोशिशें
रंग जाएगी, मेरे रंग में।
मत भूलना
जाकर इसे, बस तौलना
कि- 'बलिदानें उमंग भरती हैं।'

-दीपक कुमार मिश्र
बी.ए. हिन्दी (विशेष), द्वितीय वर्ष

जग की यह रीत बन गई

माँ के द्वार जाकर
सब माँगते बेटा
बेटा पाने की यह कैसी रीत बन गई?
सबके मन में पुत्र की बस, प्रीत ठन गई।
कन्या-पूजन करते हैं सब
पर सबको बेटा ही चाहिए।
जब कहते माँ-बाप बड़ी शान से
बेटा आया आज आँगन में मेरे।
आज मुझे मेरे बुढ़ापे का सहारा मिला है।
पालते बेटे को बड़े लाड़-प्यार से,
वही बेटा एक दिन माँ बाप को दुत्कारता
फिर न बेटा पीछे मुड़कर देखता उन्हें।
सच तो यह है कि
अब बेटियाँ भी बढ़ चली।
तोड़कर हर बंदिशें
शीर्ष पर है चढ़ चलीं।
फिर भी सबको अब भी
बेटा ही चाहिए।
बेटा पाने की यह कैसी रीत बन गई?

-वर्षा लाली
बी.ए. हिन्दी (विशेष) प्रथम वर्ष

भूल गए उन्हे?

क्या भूल गए उन्हें?
क्या बढ़ती झुर्रियाँ
तुम्हें लगने लगी स्याह तस्वीरें
या स्याह पानी
तू जान ले।
वृद्ध पेड़ और घना और हवादार होता है
क्या भूल गए उन्हें?
छुटपन में आँसू गिराये थे
ऊँगली थाम नयी तस्वीरों से परिचित कराया था,
आज खाली हाथ खुद में ऊँगली टटोल रहें हैं,
भूल गए उन्हें?
जब वे परिंदा बने कहीं जाते
उनके लौटने का इंतजार तुम करते,
कि खुशियों की कोई चॉकलेट ले आएँगें,
तुम उत्सुक होते मुस्कुराते
तुम्हारे संग मुस्कुराता आँगन आज
खुरदरा हो गया,
खुरदरे में ढूँढ रहे हैं प्यारी मुस्कान
भूल गए उन्हें?

-अमित कुमार
बी.ए. हिन्दी (विशेष), अंतिम वर्ष

एक अनोखा संबंध

(पुरस्कृत रचना)

इस बदलते समाज में अच्छे संबंध जीवन भर कायम रहें, शायद थोड़ा मुश्किल है, पर नामुमकिन नहीं है। मैं उम्र में भले ही बहुत छोटी हूँ, परंतु मेरा जन्म से अब तक का अनुभव यह कहता है कि समाज बदलता रहता है, आज भी पिता अपना कर्त्तव्य भूल जाता है, भाई दूसरे भाई को नहीं भाता, खून का रिश्ता पल भर में दुश्मनी में परिवर्तित हो जाता है। परंतु मेरा अब तक का अनुभव यह कहता है कि जो रिश्ते दिल से बने होते हैं, उनमें बहुत ही गहरा संबंध होता है। अच्छे संबंध अंत तक अपना अस्तित्त्व नहीं खोते। मैंने नौवीं कक्षा में हॉस्टल में प्रवेश किया। बचपन से ही पिता से दूर दिल्ली में अपनी बुआ के पास रहती थी। अपनी माँ समान बुआ से दूर हॉस्टल में रहना मुझे अच्छा नहीं लग रहा था माँ को तो मैंने बचपन में ही खो दिया था। इस नए माहौल में खुद को ढालना मुश्किल था। अपने साथ इस सच्चाई को स्वीकार करना कि मैं एक पैर से अपाहिज हूँ, यह मुझे उस हॉस्टल में महसूस होने लगा। सभी खेलते-कूदते, नाचते प्रत्येक उस कार्यक्रम में भाग लेते, जिसके लिए मुझे पूर्ण रूप से फिट होना अति आवश्यक था।

एक दिन की बात है विद्यालय में नृत्य प्रतियोगिता आयोजित की गई। सभी विद्यार्थियों की भांति मैंने भी प्रतियोगिता में भाग लिया। उस समय मेरी कक्षा के अनेक विद्यार्थियों ने मेरा उपहास किया। परंतु भीड़ में वह एक लड़की थी, जिसने अपनी बुलंद आवाज़ तथा सटीक स्वरों से पूरी कक्षा में चुप्पी छा जाने जैसा माहौल स्थापित कर दिया। वह भी उन्हीं में से एक थी पंरतु उसकी सोच बहुत ही अलग व ऊँची थी। मैंने उससे उसका नाम पूछा? उसने बताया-शिखा! उसने कहा-तुम्हारा नाम क्या है? मैंने कहा-मिस्टी। पल-भर में वह मुलाकात दोस्ती में परिवर्तित हो गई। अब वह मेरे साथ छाया की तरह चलने लगी। हॉस्टल से कक्षा, कक्षा से खेल के मैदान, क्षण भर भी अकेला न छोड़ती, मेरी प्रत्येक छोटी से छोटी जरूरत का ध्यान रखती। गिरने से पहले मुझे संभाल लेती। शिखा मुझ से हर दर्द को सहने के लिए कहती, मुझे हर वह कार्य करने के लिए कहती, जिसे सभी लोग मेरे लिए असंभव समझते थे। मेरे कुछ बोलने से पहले ही वह मेरी बात को समझ जाती। मैं भी उसको अच्छी तरह जान गई थी। चोट मुझे लगती थी, परंतु आँखें नम शिखा की होती थी। ऐसा क्या संबंध था मेरा शिखा से जो वह मेरे सुख-दुख में साथ देती थी। प्रतियोगिता में पाँच दिन बचे थे। सभी भागीदार जोर-शोर से अपने नृत्य के अभ्यास में लगे थे। शिखा ने मेरे हर मुश्किल कदम का अभ्यास करने में मदद की। मेरी हिम्मत को बढ़ाने के लिए मुझे प्रोत्साहित व मेरे नृत्य का निरीक्षण किया।

आखिरकार प्रतियोगिता का दिन आ गया। उसने मुझे नृत्य के लिए तैयार किया। मेरी पोशाक भी उसी ने तैयार की थी। प्रतियोगियों की सूची में मेरा दूसरा नम्बर था, मेरा दिल धक-धक कर रहा था। शिखा ने मुझे लम्बी-लम्बी साँसे लेने को कहा और दिलासा दिलाया सब अच्छा होगा। शिखा ने कहा मंच पर सिर्फ मुझे देखना और सोचना कि यहाँ कोई भी नहीं। मैं मंच पर पहुँच गई। सभी मुझे अजीब ढंग से देखने लगे। मैं सिर्फ शिखा को देख रही थी और गाना सुनते ही मैंने नृत्य शुरू कर दिया। क्षण-भर में ही सभी लोग मेरे नृत्य का आनंद लेते नजर आए, जो मुझे अजीब ढंग से

देख रहे थे। गाना कब समाप्त हो गया, मुझे पता ही नहीं चला। चारों ओर से तालियों की तेज़ आवाज़ सुनाई दे रही थी। शिखा भी जोरों से तालियाँ पीट रही थी। तीन-चार प्रस्तुतियों के बाद परिणाम घोषित होने जा रहा था। पूरे हॉल में शांति छा गई। सभी परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने शिखा की ओर देखा, उसने मुझे दिलासा दिया। प्रधानाचार्या मंच पर परिणाम का कार्ड लेकर पहुँच गई और उन्होंने प्रथम स्थान पर मेरा नाम पुकारा। चारों ओर से तालियों की आवाज़ आई। प्रधानाचार्या जी ने मुझे मंच पर बुलाया। शिखा ने मुझे मंच पर जाने में मदद की। मेरी कक्षा के सभी विद्यार्थियों ने मेरा अभिनंदन किया। सभी अध्यापकों को भी मुझ पर गर्व था। मैं शिखा के गले से लगी, मेरी खुशी आँसुओं के रूप में बह रही थी। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे प्रथम पुरस्कार तो मिला ही था साथ मुझे आज एक अनोखा संबंध मिला, जो शिखा और मेरा था। जिसके आगे दुनिया के सारे संबंध कमजोर पड़ गए।

मैं आज शिखा से बहुत दूर हूँ, फिर भी यह अनोखा सम्बन्ध मुझे भावुक कर देता है।

-मिथिलेश
बी.काम (प्रो.), प्रथम वर्ष

माँ की पुकार

आज भूल गया है क्यों इंसान?
भगवान का दिया हुआ इक अनमोल वरदान।
माँ कहती है दुनिया जिसको
भगवान भी करता उसका सम्मान।।

ममता के आँचल से सींचकर,
जिसने तुमको बड़ा किया।
अपने ख्वाबों की तिलांजलि देकर
तुम्हारे सपनों को दी उड़ान।
आज वही, हाँ आज वही,
अपनी पहचान को लेकर
कर रही है त्राहि माम।।
बचपन में तुम कहते थे,
माँ मेरी है, माँ मेरी है।
आज तुम्हारी जरूरत है जब मुझको,
तुम कहते हो, क्या ये जरूरी है।

बचपन में दिया जिसने तुम्हें ममता का पुरस्कार
आज कुछ पल के लिए ही सही,
क्यों करते हो तुम उसका तिरस्कार।
कभी नहीं कहती है वो कि,
तुम उसकी जरूरतें पूरी करो,
बस इतनी-सी चाह है उसकी
तुम उसके बुढ़ापे की लाठी बनो।।

अपनी साँसों से भी ज्यादा,
जिसने तुमको प्यार किया।
लेकिन किसी के दो पल की मोहब्बत को
लेकर,
तुमने उसको त्याग दिया।
खुद भूखी रहकर भी जिसने
तुमको भोजन का सौभाग्य दिया।
रातों में जगकर जिसने,
तुम्हें सपनों का उपहार दिया।
अपने भाग्य पर आज,
क्यों रो रही वो नारी महान।
आज भूल गया है क्यों इंसान।।

बचपन में मेरी ममता की छाँव पाने की खातिर
तुम आपस में लड़ते थे,
आज उसी छाँव को छोड़ने के लिए,
तुम फिर आपस में लड़ते हो।
आखिर क्या कसूर है मेरा,
करना छोड़ दिया मेरा सम्मान।
आज भूल गया है क्यों इंसान।।

आज मैं एक अबला नारी,
तुमसे बस यही कर रही पुकार
खिलने दो मेरे ख्वाबों का सौरभ
जिसके लिए बरसों किया-मैंने इंतजार
डाल दो एक कोने में मुझको,
मैं बस वहीं पड़ी रहूँगी
नहीं करूँगी तुमसे कोई दरख्वास्त
बस तुम्हारी नजरों के सामने रहूँगी।

मत करो मुझे खुद से दूर,
मैं गिर जाऊँगी उस लोक को
फिर न लौट के आऊँगी,

तुम ही हो मेरे ख्वाबों का दीपक
मेरे जिंदा रहने की हकीकत
थाम लो आज मेरे आँचल का छोर
नहीं तो टूट जाएगी मेरे जीवन की डोर।

अपने सीने से लगाकर पाला है तुमको,
अपनी गोद में लेकर, दुनिया दिखाई है तुमको
तुमसे बस इतना कहती हूँ आज,
कर दो मुझ पर बस इक एहसान
तुम और ऊँचा उठो, दिल से निकलेगी बस ये
आवाज
बस कर दो मेरा थोड़ा-सा सम्मान
बस कर दो मेरा थोड़ा-सा सम्मान
आज भूल गया है क्यों इंसान।

-अनुराग कुमार
बी.ए. इतिहास (विशेष), द्वितीय वर्ष

माँ तेरी है (पुरस्कृत रचना)

किसी ने ठीक ही कहा है कि माँ अपने-आप में एक अलग दुनिया है जहाँ अपने बच्चों की हर-एक छोटी-बड़ी जरूरतों का बखूबी ख्याल रखती है। माँ अपने बच्चों के लिए उस जुगनू की तरह है, जो स्वयं अँधेरे में होता है लेकिन दूसरे को प्रकाश देता है। इन्हीं कारणों के कारण ही बचपन में माँ हम सब की प्यारी होती है और हम सब अपनी माँ पर अपना-अपना दावा ठोक रहे होते है कि 'माँ मेरी है, माँ मेरी है।'

लेकिन आधुनिक समय में दुनिया स्वार्थी हो गई है, एक माँ, जिसका नाम रेखा देवी है, उसका एक 32 वर्षीय बेटा सौरभ है।

सौरभ के पिताजी की मौत सौरभ के जन्म के तुरंत बाद हो गई थी। अनेक दु:खों के पहाड़ को सहकर रेखा रानी ने अपने पुत्र को उच्च शिक्षा अर्जित करवाकर डॉक्टर बनाया। आज जब रेखा रानी की उम्र लगभग साठ वर्ष की हो गई है तब उसका डॉक्टर बेटा सौरभ अपनी माँ को अलग-अलग कारणों से समय-समय पर परेशान करता है।

डॉक्टर सौरभ अपनी साठ वर्षीय माँ से उनके जीवन की अंतिम बहुमूल्य दौलत-उनका घर अपने नाम करवाना चाहता है ताकि सौरभ उसे बेच कर किसी पॉश एरिया में अपने नाम से फ्लैट खरीद सके।

इससे पहले भी सौरभ अपने घर का कीमती सामान बेच चुका है, अपने शौक को पूरा करने के लिए। सौरभ है तो एक डॉक्टर लेकिन वह डॉक्टर से बड़ा शराबी है जिस व्यक्ति को दिन-रात मरीजों की तकलीफ को दूर करने के विषय में सोचना चाहिए, वह व्यक्ति दिन-रात शराब के नशे में डूबा रहता है। जिसके फलस्वरूप सौरभ पर कई लोगों का उधार बाकी है। उधारी के कारण सौरभ अपने पुरखों की ज़मीन बेचना चाहता है।

एक दिन सौरभ अपनी माँ को ज़मीन देने के लिए खूब पीटता है। पर रेखा रानी इसके लिए तैयार नहीं होती है।

एक दिन रेखा रानी अकेले में सोच रही होती है कि यह जमीन है-किसके लिए? सौरभ के लिए ही ना क्योंकि उसके मरने के बाद तो स्वत: यह ज़मीन उनके बेटे की हो जायेगी। अत: रेखा रानी उस दिन निश्चय करती है कि कल सुबह वह अपनी ज़मीन अपने बेटे के नाम कर देगी। रात के बारह बजे रेखा रानी गहरी नींद में सो रही होती है और दौलत के नशे में अंध उस औरत का बेटा सौरभ हाथ में एक लंबा सस छुरा लेकर अपनी माँ की हत्या करने के उद्देश्य से अपनी माँ के पास खड़ा रहता है। सौरभ अपनी माँ की हत्या करने ही वाला होता है कि इतने में उसकी नज़र माँ के सिरहाने की तरफ आती है, एक कागज का टुकड़ा थोड़ा-थोड़ा सा दिखाई दे रहा होता है। सौरभ धीरे-से उस कागज को उठाता है और उस कागज में लिखे शब्दों को पढ़ने लग जाता है। जिसमें लिखा होता है- ''मेरे प्यारे बेटे सौरभ! मैं, अपनी ज़ायदाद तुम्हारे नाम कर रही हूँ इस आशा के साथ कि जीवन में तुम शराब के नशे से मुक्त होकर लोगों के कष्ट-निवारण की दिशा में कुछ करोगे। तुम अपना ख्याल रखना क्योंकि अब मैं तुम्हारा, ख्याल नहीं रख पाऊँगी। मैं तुम्हें और इस दुनिया को छोड़कर हमेशा-हमेशा के लिए जा रही हूँ। सौरभ को यह पढ़कर रोना आ गया उसकी आँखें अब पूरी तरह खुल चुकी थी। वह माँ के महत्त्व को समझने लगा था। सौरभ अब यह समझ चुका था कि दुनिया की सबसे अनमोल रत्न, दौलत सिर्फ और सिर्फ माँ है, जो नि:स्वार्थ भाव से अपने बच्चों की परवरिश करती है।

-कुन्दन कुमार
हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार, द्वितीय वर्ष

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और नियमन

कल तक जो 'मेक इन इंडिया' की बात करते थे वे ही आज ''बैन इन इंडिया'' पर उतर आए हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के चर्चित नाट्य समूह 'अंकुर' को उसकी नाट्य प्रस्तुति से रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है। 'इंडियाज डॉटर' पर प्रतिबंध लगाना, केरल के लेखक मुरुगन का एक साहित्यकार के रूप में मौत का ऐलान करना, वर्त्तमान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर मँडरा रहे खतरे का अहसास करा रहा है। बांग्लादेश में ब्लॉग लेखक अविजीत रॉय को सरेआम सड़क पर काट दिया जाता है। भारत ही नहीं दुनिया भर में होने वाली घटनाएँ चाहे वो शार्ली हेब्दो की हो या इराक में लड़की को फाँसी दिये जाने की, हर जगह इस खतरे को महसूस किया जा सकता है। ऐसे में इन खतरों से बचने का उपाय तलाशना भी आवश्यक है।

सामाजिक और साँस्कृतिक नैतिकता के नाम पर किसी भी रचना, फिल्म, पत्रिका को प्रतिबंधित करने की एक आम धरणा बनती जा रही है। अगर कोई रचना, फिल्म, पत्रिका समाज पर बुरा प्रभाव डालती भी है तो इसके आकलन का अधिकार जनता के हाथ में दिया जाना चाहिए न कि किसी वर्ग विशेष के हाथ में। शार्ली हेब्दो पत्रिका किसी धर्म के लोगों की भावनाएँ आहत करती हैं इसलिए उनके साथ हुई बर्बरता उचित है या इस घटना के खिलाफ सड़कों पर उतरे लाखों लोग, जिनमें ज्यादातर उसी धर्म विशेष से जुड़े हैं वो उचित? मुरुगन का अपने साहित्य में समाज की रूढ़िवादिता को उजागर करना उचित है या वो समाज जो उस रूढ़िवादिता से बाहर निकलना नहीं चाहता? इंडियाज डॉटर पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है कि उसमें एक बलात्कारी का निदंनीय बयान दिखाया गया है, जो समाज पर गलत प्रभाव डालेगा। इसी समाज में मंत्री, सांसद, धर्मगुरु इस तरह की बयानबाजी सरेआम करते हैं तो उनके मुँह पर पट्टा नहीं लगता! सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि पितृसत्तात्मक समाज में जब हर तीसरा-चौथा व्यक्ति इस तरह की बातें करता है तो क्या समाज की भावनाएँ आहत नहीं होती?

एक पक्ष यह भी स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार आपको महात्मा गांधी या मदर टेरेसा का अपमान करने का अधिकार नहीं देता। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार आपको किसी धर्म, क्षेत्र आदि के लोगों की भावनाएं आहत करने का अधिकार नहीं देता। अगर राज्य की दृष्टि से देखें तो आपकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्राता किसी राज्य के संप्रभुता, सुरक्षा से बढ़कर नहीं हो सकता। स्वतंत्रता के नाम पर आप किसी के मान-सम्मान को ठेस नहीं पहुँचा सकते।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि सामाजिक, साँस्कृतिक नैतिकता का पैमाना क्या हो और इसको तय कौन करे? आदिकाल से ही समाज में नैतिकता को तय करने का अधिकार दबंग लोगों के हाथों में ही रहा है। गौतम ऋषि अहिल्या को बिना सोचे शाप दे देते हैं क्योंकि नैतिकता तय करने का अधिकार उनके हाथ में था। स्त्रियों को सबसे ज्यादा नियम-कानून के बंदिशों में बांधा जाता है क्योंकि नियम तय करने का अध्किार हमेशा से पुरुषवादी ताकतों में रहा है। दलितों को समाज से तिरस्कृत करके बाहर निकाल दिया जाता है क्योंकि नैतिकता तय करने का अधिकार सवर्णों के हाथ में था।

आज भी समाज का कुछ हिस्सा उस विचारधारा से ऊपर उठना नहीं चाहता क्योंकि उसे अपने अस्तित्व पर खतरा महसूस होने लगता है। आज भी पंचायतें लड़कियों को जींस न पहनने, मोबाइल न रखने, चाउमिन न खाने का फरमान सुनाता है। हद तो तब होती है जब लड़कियों को पुस्तकालयों तक में न

जाने का फतवा जारी कर दिया जाता है। यानि कि आज भी नैतिकता के नाम पर समाज लोगों के खाने, पहनने, पढ़ने आदि पर प्रतिबंध लगाना चाहता है। राजनीति में सत्तापक्ष के बयान से विपक्ष आहत होता है तो विपक्ष से सत्ता ऐसे में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर नियम लगाने वाले लोग कौन हैं और इसके पीछे उनका मकसद क्या है; इसको आसानी से समझा जा सकता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बदौलत देश में इरोम शर्मिला, अन्ना हजारे, मेधा पाटेकर जैसे चेहरे नजर आते हैं। जो आम नागरिकों हक के खातिर आवाज उठाते हैं। पूँजीवाद के बढ़ते इस दौर में जब किसानों का जल, जंगल, जमीन छीनकर कुछ विशेष लोगों के हाथों में दिया जा रहा है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की एक मात्रा हथियार है जिसके बदौलत लोग अपनी आवाज उठा सकते हैं। ऐसे में इन आवाजों को दबाने के उद्देश्य ये अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को छीनने का प्रयत्न किया जा रहा है। मीडिया से कुछ न्याय की उम्मीद नजर आ रही थी पर पूँजीवादी ताकतों ने सबसे पहले उसे अपना ग्रास बनाया। सोशल मीडिया पर भी पेड वर्कर्स की सहायता से ट्रेंड बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

ऐसे में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किसी भी तरह का नियम कितना उचित है या अनुचित? यह तय करने का अधिकार सिर्फ और सिर्फ समाज के आम नागरिकों पर छोड़ देना ज्यादा सही है क्योंकि उसमें ताकत है कि वो सत्ता तक को हिला दे। नहीं तो मुट्ठी भर लोगों के हाथ में सब कुछ छोड़ देने का खामियाजा कई अविजीत रॉय की जान देकर भुगतना पड़ेगा और लोग हमेशा की तरह मूक दर्शक बने रहेंगे।

-बिपिन बिहारी दुबे
बी.ए. हिन्दी पत्रकारिता एवं जनसंचार,
द्वितीय वर्ष

क्यों?

हमें नहीं व्याकुलता तनिक,
सदा यहाँ दुविधा का घेरा!
कहाँ ढूँढते संध्या दीपक,
वह नवनीत प्रकाश जो तेरा!

भोग विलास के भव सागर में,
संचित लोभ ललक का डेरा!
स्वार्थ, तृष्णा और द्वेष भावना
का मन के मंदिर में बसेरा!

धर्म, जाति और ऊँच-नीच से,
क्या तुमने अब तक मुँह फेरा!
तब क्यों? चंद है राजा-राघव,
क्यों रंकन का यहाँ बसेरा!

हमें नहीं व्याकुलता तनिक,
सदा यहां दुविधा का घेरा!
कहाँ ढूँढते संध्या दीपक,
वह नवनीत प्रकाश जो तेरा!

तेरी प्रातः तेरी संध्या,
सब तो तेरा ही है प्राणी!
तब क्यूँ करता-फिरता हिंसा,
और मुँह में बर्बर-पशु वाणी!

निर्लज्जा चतुर-चतेरा,
पीता भ्रष्टाचार का पानी!
क्या बदलेगा काव्य सभ्य समाज ये,
या फिर होगी यही कहानी!

मेरे मन के शिथिल कांत में,
इन्हीं भावों का ढेरा!!
हमें नहीं व्याकुलता तनिक,
सदा यहां दुविधा का घेरा!
कहाँ ढूँढते संध्या दीपक,
वह नवनीत प्रकाश जो तेरा!

अमित कुमार श्रीवास्तव
बी.ए. हिन्दी (विशेष), द्वितीय वर्ष